

Biyani's Think Tank

Concept based notes

Philosophical & Sociological Foundation of Education

M. Ed.

Shyam Sundar Kumawat

Deptt. of Education

Biyani Girls B.Ed. College, Jaipur



Published by :

Think Tanks

Biyani Group of Colleges

Concept & Copyright :

©**Biyani Shikshan Samiti**

Sector-3, Vidhyadhar Nagar,

Jaipur-302 023 (Rajasthan)

Ph : 0141-2338371, 2338591-95 • Fax : 0141-2338007

E-mail : acad@biyanicolleges.org

Website :www.gurukpo.com; www.biyanicolleges.org

First Edition : 2009

While every effort is taken to avoid errors or omissions in this Publication, any mistake or omission that may have crept in is not intentional. It may be taken note of that neither the publisher nor the author will be responsible for any damage or loss of any kind arising to anyone in any manner on account of such errors and omissions.

Leaser Type Setted by :

Biyani College Printing Department

Preface

I am glad to present this book, especially designed to serve the needs of the students. The book has been written keeping in mind the general weakness in understanding the fundamental concepts of the topics. The book is self-explanatory and adopts the “Teach Yourself” style. It is based on question-answer pattern. The language of book is quite easy and understandable based on scientific approach.

Any further improvement in the contents of the book by making corrections, omission and inclusion is keen to be achieved based on suggestions from the readers for which the author shall be obliged.

I acknowledge special thanks to Mr. Rajeev Biyani, *Chairman* & Dr. Sanjay Biyani, *Director (Acad.)* Biyani Group of Colleges, who are the backbones and main concept provider and also have been constant source of motivation throughout this Endeavour. They played an active role in coordinating the various stages of this Endeavour and spearheaded the publishing work.

I look forward to receiving valuable suggestions from professors of various educational institutions, other faculty members and students for improvement of the quality of the book. The reader may feel free to send in their comments and suggestions to the under mentioned address.

Author

Syllabus

Section-A Philosophical Foundations of Education

1. The Meaning & nature of Philosophy: Use of Philosophy, Branches of Philosophy; metaphysics, epistemology, and axiology and their implications for education; philosophical redirection of educational research in recent times.
2. Indian Philosophical Foundations of Education-Characteristics of Indian Philosophy; Education as conceived in vadic times; Nature of the learner goals of life, theory of knowledge and teh ethical values as advocated in the following philosophies:
Buddhism
Jainism
Nyaya
Vedanta (Upanishad, Geeta and Advaita Vedanta only) Samkhya. Teacher student relationship as manifest in Bhagwatgeeta and Upnishads.
Quranic monism and monotheism and its influence in education
3. Western Philosophical Foundations of Education-A short introduction to major Western Philosophical Naturalism: Its metaphysics and epistemology: aims of education, educative process, freedom and discipline in education according to Naturalism

Idealism : Its Metaphysics and theories of knowledge: the nature of the learner, aims of education, teacher pupil relationship, of education, freedom and discipline values in education and theories of Knowledge, Realism : Its Metaphysics and the learner, freedom and discipline. Realism: Its Metaphysics and theories of Knowledge: aims of education, nature of the learner and educative process according to Realism. Pragmatism: Its methaphysics anf theories of knowledge; the nature of the learner, aims of education, teacher pupil relationship, method of education and curriculum according Exictenalism to Pragmatism.
4. Contemporary philosophical thought and education Humanism Existentialism

Section B Sociological Foundation of Education

1. Concept, meaning, scope and Functions of Sociology of Edu. Education as a Social Sub-system.
 - i. Concept of Social system
 - ii. Specific characteristics of education as a special sub-system
 - iii. Education and its relationship with other special sub-system i.e. Family, Caste and State.
2. Education as a social process:
 - i. Theories of socialization.
 - ii. Process of acculturation and socialisation.
 - iii. Role of family, Caste, and state in preservation transmission and enrichment of culture.
 - iv. The concept of culture. Cultural lag, conflict,
 - v. Unity and diversity in India, making composite culture. Role of education.
 - vi. Concept of Social stratification & Factors & affecting
3. (a) Change and Education:
 - i. Concepts of change and planned change.
 - ii. Process of Planned change.
 - iii. Functions and qualities of change agent.
 - iv. Social Mobility, Modernization and Education.
 - v. Impact of science and technology on society & education.

(b) Social structure & Education-Conflict and Crisis within Indian Social Structure.
4. Social dimension of Education
 - i. Approaches to religious and moral education Humanistic and spiritual approaches.
 - ii. Socialistic democratic state of Indian society and education.
 - iii. Existing educational disparities, nature and causes equalisation of education opportunities.
 - iv. Radical thought attentations in education, Deschooling, Concept and consequences. Futurelogy of Education.

Sessional Work:

1. Two term papers
2. Three abstract of recent articles related to the subject published in journals

Content

S.No	Name of Chapter	Page Number
1	Philisophical Foundations of Education	
2	Sociological Foundation of Education	
3		
4		



Section A

Philosophical Foundations of Education

- प्रश्न -1 फिलॉसफी का मुख्य तत्व है—
अ.) ज्ञान मीमांसा ब.) तत्व मीमांसा
स.) मूल्य मीमांसा द.) उपरोक्त सभी (द)
- प्रश्न -2 तत्व मीमांसा का सम्बन्ध है—
अ.) ज्ञान से ब.) मूल्यों से
स.) सत्य से द.) चिन्तन से (स)
- प्रश्न -3 शिक्षा के अधिकांश उद्देश्य दिये —
अ.) तत्व मीमांसा ब.) ज्ञान मीमांसा
स.) मूल्य मीमांसा द.) तर्क मीमांसा (ब)
- प्रश्न -4 कान्ट तत्व मानता है —
अ.) आत्मा को ब.) विचार को
स.) तर्क बुद्धि को द.) उपरोक्त सभी को (स)
- प्रश्न -5 आदर्शवाद की ज्ञानमीमांसा में प्रधानता है —
अ.) ज्ञान पक्ष की ब.) भाव पक्ष की
स.) क्रिया पक्ष की द.) उपरोक्त सभी को (ब)
- प्रश्न -6 आदर्शवाद ने शिक्षा को प्रभावित किया —
अ.) शिक्षण विधियों ब.) शिक्षण उद्देश्यों
स.) पाठ्यक्रम को द.) अनुशासन को (ब)
- प्रश्न -7 'एमील' पुस्तक की रचना की —
अ.) हरबर्ट स्पेन्सर ने ब.) बेकन ने
स.) रूसो ने द.) फोबेल ने (स)
- प्रश्न -8 फ्रान्सिस बेकन का योगदान है —
अ.) आगमन शिक्षण विधि ब.) निगमन शिक्षण विधि
स.) उपरोक्त दोनों द.) उपरोक्त कोई नहीं (अ)

- प्रश्न -9 'बुराईया समाज से आती हैं' कथन दिया -
 अ.) हरबर्ट ने ब.) फ्रांजिल ने
 स.) रूसो द.) जॉन लॉक ने
 (स)
- प्रश्न -10 यथार्थवादी सत्य मानते हैं -
 अ.) पदार्थ ब.) जगत
 स.) बुद्धि द.) उपरोक्त सभी
 (द)
- प्रश्न -11 प्रयोजनवाद के प्रवर्तक हैं-
 अ.) जान डीवी ब.) विलियम जेम्स
 स.) किलपैट्रिक द.) उपरोक्त कोई नहीं
 (ब)
- प्रश्न -12 प्रयोजनवाद सत्य मानता हैं-
 अ.) पदार्थ ब.) प्रकृति
 स.) अनुभव द.) आत्मा
 (स)
- प्रश्न -13 "व्यक्ति की आन्तरिकता ही यथार्थ या सत्य है" यह कथन है-
 अ.) काण्ट का ब.) किर्कगार्द का
 स.) ज्यां पाल सार्त्र द.) देकार्त का
 (ब)
- प्रश्न -14 गीता की मौलिकता हैं -
 अ.) निष्काम कर्म ब.) स्थितप्रज्ञः
 स.) दोनो ही द.) उपरोक्त कोई नहीं
 (स)
- प्रश्न -15 सांख्य -दर्शन के प्रवर्तक है -
 अ.) पतंजलि ब.) कपिल
 स.) गौतम द.) कणाद
 (ब)
- प्रश्न -16 योग दर्शन के मूल तत्व है -
 अ.) प्रकृति ब.) पुरुष
 स.) ईश्वर द.) उपरोक्त सभी
 (द)
- प्रश्न -17 न्याय दर्शन के प्रवर्तक है-
 अ.) महर्षि कणाद ब.) कपिल ऋषि
 स.) महर्षि गौतम द.) रामानुजाचार्य
 (स)
- प्रश्न -18 अद्वैत -दर्शन के प्रवर्तक है-
 अ.) शंकराचार्य ब.) रामानुजाचार्य
 स.) बादरायण द.) महर्षि कपिल
 (अ)

- प्रश्न -19 जैन शिक्षा की विधि है -
 अ.) अन्तः प्रज्ञा विधि ब.) कैवल्य विधि
 स.) निधियासन विधि द.) उपरोक्त सभी
 (द)
- प्रश्न -20 बौद्ध उपदेश का सार है-
 अ.) मुक्ति बोध ब.) दुःख निरोध
 स.) निर्वाण की अवस्था द.) उपरोक्त सभी
 (द)
- प्रश्न 21: दर्शन का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?
 Define the meaning of Philosophy ?

उत्तर:-

दर्शन का अर्थ -

किसी भी विज्ञान को समझने के लिए उसमें अर्थ की विवेचना विभिन्न दृष्टिकोणों से होनी चाहिए अतः जरूरी है कि दर्शन के अर्थ को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझना चाहिए।

- 1- दर्शन का शाब्दिक अर्थ - दर्शन शब्द भारतीय प्राचीन भाषा संस्कृत से निकला है। 'दर्शन' शब्द संस्कृत की 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ है देखना। आंग्ल भाषा में फिलासॉफी शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका निर्माण दो शब्दों से मिलकर बना है, फिलोस +सोफिया फिलोस का अर्थ है प्रेम या अनुराग, सोफिया का अर्थ है ज्ञान। इस प्रकार पुरे शब्द का अर्थ हुआ ज्ञान का प्रेम अथवा ज्ञानानुराग।
- 2- दर्शन का विशिष्ट अर्थ - दर्शन ऐसी जटिल समस्याओं का कठिन अनुशासित तथा सावधानी के साथ किया हुआ विश्लेषण है जिसका मानव ने कभी अनुभव किया हो।
- 3- दर्शन का व्यापक अर्थ - व्यापक अर्थ में दर्शन, तर्कपूर्ण, विधिपूर्वक एवं क्रमिक रूप से विचार करने की कला है इस अर्थ में संसार का प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात दार्शनिक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की यात्रा में अनेकानेक अनुभव प्राप्त होते हैं वह किसी न किसी रूप में सत्य की खोज में निरन्तर लगा रहता है।
- 4- भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार दर्शन का अर्थ - भारतीय चिन्तन के अनुसार परमतत्व का साक्षात्कार या अपरोक्षानुभव ही दर्शन का अर्थ है दर्शन वह है जिसके द्वारा यथार्थ तत्व की अनुभूति हो 'दृश्यते यथार्थ तत्त्वमनेन' मनु और याज्ञवल्क्य ने आत्मदर्शन को सम्यक दर्शन माना है। वे कहते हैं आत्मा साक्षात् अनुभव करने योग्य है और यह अनुभव श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन से प्राप्य है।

दर्शन की परिभाषा

दर्शन की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :-

प्लेटो के अनुसार - "पदार्थ या वस्तुओं की शाश्वत् प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना दर्शन के उद्देश्य है"।

अरस्तु के अनुसार - " दर्शन ऐसा विज्ञान है जो परमतत्व के यथार्थ की जांच करता है। फिश्ते ने दर्शनशास्त्र को ज्ञान का विज्ञान कहा है।

हरबर्ट स्पेन्सर ने अन्य विद्याओं के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति को माना तथा विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त या तार्किक अध्ययन दर्शनशास्त्र को कहा है। काम्टे ने दर्शनशास्त्र को विज्ञानों का विज्ञान कहा है।

दर्शन का विषय क्षेत्र :

दर्शन का विषय क्षेत्र व्यापक है अध्ययन की सुविधा हेतु इसे तीन भागों में विभाजित किया गया है।

- (1) तत्व मीमांसा (2) ज्ञान मीमांसा (3) मूल्य मीमांसा

प्रश्न 22: दर्शन की आवश्यकता को स्पष्ट किजिए ?
Define the need of philosophy ?

उत्तर:-

दर्शन की आवश्यकता निम्न प्रकार से है

- (1) दर्शन और शिक्षा के उद्देश्य :- शिक्षा जीवन को स्मुन्नता बनाने वाली एक दिव्य चेतना है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही दर्शन है। दर्शन ही जीवन के लक्ष्यों को निर्धारित करता है शिक्षा जीवन के लक्ष्यों के अनुरूप अपने उद्देश्यों का निर्माण करती है। शिक्षा के उद्देश्य तात्कालिक विचारधाराओं से प्रभावित होते रहे हैं और होते रहेंगे। शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों के रूप में दर्शन मूलतः जीवन के साधनों को निर्धारित करता है।
- (2) दर्शन एवं पाठ्यक्रम :- शिक्षा क्रम में हम वैज्ञानिक विषयों को प्रधानता दे या सांस्कृतिक विषयों को इसमें दस्तकारी को स्थान दिया जाय या नहीं आदि बातें हमारी दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रभावित होगी आध्यात्मिक विचारधारा नैतिकशास्त्र तथा धर्मशास्त्र को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने पर बल देती है। आदर्शवादी दर्शन पाठ्यक्रम में मानवीय विचारों एवं मूल्यों को अधिक महत्व देता है। प्रकृतिवादी दार्शनिक बालक के स्वाभाविक विकास पर अधिक बल देते हैं।
- (3) दर्शन एवं शिक्षण विधियां :- पाठ्यक्रम की तरह ही दर्शनशास्त्र शिक्षण विधि के चयन में भी सहायक होता है। विभिन्न दार्शनिकों ने भी अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुकूल शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया है। आदर्शवादी व्याख्यान एवं प्रश्नोत्तर विधि को उपयुक्त समझते हैं तो प्रकृतिवादी बालक की स्वतन्त्रता पर बल देते हैं जबकि प्रयोजनवादी क्रियाविधि को उपयुक्त समझते हैं स्पष्ट है कि जिस दर्शन ने सिद्धान्तों का जैसा प्रतिपादन किया है उसमें समर्थकों ने उसके अनुकूल ही शिक्षण विधियों का प्रतिपादन किया है।
- (4) दर्शन तथा अनुशासन :- शिक्षा के अन्य अंगों की तरह अनुशासन भी दर्शन से प्रभावित होता है। किसी देश की दार्शनिक एवं राजनीतिक विचारधारा अनुशासन के स्वरूप को निश्चित करती है। प्रकृतिवादी बालक के स्वाभाविक विकास के लिए किसी प्रकार के नियंत्रण की आवश्यकता के उपयोग को नहीं मानते। आदर्शवादी प्रयोगात्मक अनुशासन पर बल देते हैं जबकि प्रयोजनवादी आत्मनियंत्रण के पक्षपाती हैं।
- (5) दर्शन और शिक्षक :- दार्शनिक विचारधाराओं में परिवर्तन के साथ ही विद्यालय में शिक्षक का स्थान बदलता रहा है क्यों कि दर्शन ही शिक्षा में शिक्षक के स्थान को निर्धारित करता है। प्रकृतिवादी विचारधारा शिक्षक का स्थान पर्दे के पीछे मानती है जबकि आदर्शवादी के अनुसार विद्यालय में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है।
- (6) दर्शन एवं पाठ्यपुस्तक :- पाठ्यक्रम की भांति पाठ्यपुस्तकों पर भी दर्शन का व्यापक प्रभाव पड़ता है। पाठ्यपुस्तकें जीवन की मान्यताओं आदर्शों एवं शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सशक्त साधन हैं। पाठ्यपुस्तकों के चयन एवं निर्माण

प्रदर्शन का आधार का कार्य करता है। पाठ्यपुस्तकों के चुनाव के लिए जीवन की मान्यताओं, आदर्शों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाता है क्यों कि इसके द्वारा जीवन में मानदण्डों की स्थापना की जाती है।

- (7) दर्शन एवं शैक्षिक प्रशासन :- विद्यालय में शैक्षिक प्रशासन में भी दर्शनशास्त्र का काफी प्रभाव रहता है। दर्शन समाज को मान्यताओं तथा आदर्शों का विश्लेषण करके उसके लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त निश्चित करता है। विद्यालय का शासन किसके हाथ में हो ? शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण हो अथवा नहीं ? इन प्रश्नों का उत्तर दर्शन द्वारा दिया जाता है।

प्रश्न 23:

भारतीय दर्शन की और शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किजिए ?

Explain the Indian philosophy and historical background of education ?

उत्तर:-

भारतीय शिक्षा का इतिहास बहुत प्राचीन है, प्राचीन भारत की शिक्षा के स्वरूप का वर्णन हमें वेदों में मिल जाता है। सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद है। इसी वेद में तत्कालीन शिक्षा के स्वरूप का वर्णन है वैदिक युग में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

वैदिककाल में शिक्षा :- वैदिककाल में लगभग 2500 ई0पू0 से 500 ई0पू0 तक माना जाता है। भारत में अभी लगभग 3000 ई0पू0 में आए थे। इस काल की शिक्षा को ब्राह्मणीय शिक्षा भी कहते हैं क्यों कि इस समय की शिक्षा पर ब्राह्मणों का अधिकार था इस समय गुरुओं के द्वारा एक समय में अनेक छात्रों को शिक्षा दी जाती थी। यद्यपि उस समय विद्यालय नहीं थे परन्तु इस बात के उदाहरण मिलते हैं कि बालकों को सामूहिक रूप से शिक्षा दी जाती थी। वैदिक काल में अनेक प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ थीं। उनमें से प्रमुख शिक्षा संस्थाएँ इस प्रकार हैं - चरण घटिका, टोल, परिषद्, गुरुकुल, विद्यापीठ, विशिष्ट विद्यालय, मन्दिर महाविद्यालय ब्राह्मणीय महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय वैदिक युग में शिक्षा को उचित स्थान प्राप्त था शिक्षा मोक्ष प्राप्त करने का साधन मानी जाती थी। प्राचीन भारतीय शिक्षा का सबसे प्रमुख उद्देश्य ब्रह्म को समझना था।

वैदिक काल में शिक्षा की विशेषताएँ - वैदिककाल में शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ या शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार थे :-

1. मोक्ष प्राप्त करना।
2. संस्कृति का संरक्षण
3. स्वस्थ चरित्र का विकास
4. सामाजिक कुशलता की प्राप्ति
5. व्यक्तित्व का विकास

प्राचीन काल में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध

प्राचीन काल में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र की भांति था। कुछ ऋषियों ने आचार्य को छात्र का मानस पिता माना है। गुरु छात्रों को ज्ञान प्रदान करता था परन्तु इससे भी और अधिक महत्वपूर्ण वह चरित्र का निर्माण करना मानता था। छात्र विद्या अध्ययन करने के लिए उन्हीं सम्मानित गुरुओं के पास जाते थे जिनकी विद्वता के कारण ख्याति थी। प्राचीन काल में शिष्य गुरु की तन-मन धन से सेवा करते थे। गुरु और शिष्य के कर्तव्य इस प्रकार के थे -

1. गुरु के कर्तव्य - प्राचीन समय में गुरु के कर्तव्य-शिक्षण कार्य करना। छात्रों के भोजन और वस्त्र की व्यवस्था करना, आवश्यकता पड़ने पर उनकी चिकित्सा और सेवा-सुश्रुषा करना होता था। गुरु भी योग्य शिक्षकों को उत्साहित किया करते थे।

2. शिष्य के कर्तव्य – प्राचीन समय में शिष्य के कर्तव्य भिक्षा मांगना, लकड़ी चुनना, पशु चराना, पानी भरना, अध्ययन करना एवं गुरु की आज्ञा का पालन करना होता था। उस समय छात्र पर निन्दा नहीं करते थे। यदि कोई छात्र ऐसा करते हुए पाया जाता था तो उसे दण्डित किया जाता था। गुरु अपने शिष्यों को किसी प्रकार से कोई कष्ट नहीं होने देता था गुरु सदैव अपने शिष्यों की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहता था। शिष्य भी इस बात का ध्यान रखते थे कि उनमें किसी कार्य से गुरु को कोई कष्ट न पहुंचे शिष्य गुरु की प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे उनका मुख्य कार्य गुरु की सेवा करना होता था।

गुरु अपने शिष्यों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करने को सतत प्रयत्नशील रहता था। वह बालकों में अच्छी आदतों का निर्माण करता था गुरु अपने शिष्यों के लिए भोजन और वस्त्र का भी प्रबन्ध करता था।

अतः कहा जा सकता है कि गुरु और शिष्य के पारस्परिक सम्बन्ध स्नेह और कर्तव्य की भावनाओं से युक्त होते थे। गुरु और शिष्य दोनों का ही एक समान लक्ष्य ज्ञान की प्राप्ति करना होता था।

प्रश्न 24: बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त क्या है ?

अथवा

बौद्ध दर्शन के प्रमुख तत्व क्या-क्या है ?

What are the main elements/constituents of Boddh Darshan ?

उत्तर:-

महात्मा बुद्ध एक नवीन धर्म के प्रवर्तक ही नहीं थे वरन् एक प्रमुख दर्शनशास्त्री भी थे उन्होंने वैदिक कर्मकांडों के विरोध-स्वरूप एक नवीन धर्म का उद्भव किया। गौतम बुद्ध (बचपन का नाम सिद्धार्थ) का जन्म नेपाल के तराई क्षेत्र में स्थित लुम्बिनी वन नामक स्थान पर 563 ई0पू0 में हुआ था। 483 ई0 पू0 में 80 वर्ष की आयु में गोरखपुर जिले में कुशीनगर में उनका देहावसान (निर्वाण) हुआ।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त :- बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त उनमें धर्मग्रन्थ (त्रिपिटक) में लिखित है इन सिद्धान्तों की विवेचना निम्नवत् की जा सकती है-

1. चार आर्य सत्य – अपने ग्रंथ व्याख्यान में बुद्ध ने चार आर्य सत्यों को बताया हैं ये बौद्ध धर्म की आधारशिला है।
 - अ – दुःख – बुद्ध ने बताया कि जीवन दुःख से परिपूर्ण है। जिसके कारण जीव जन्म मरण से छुटकारा नहीं मिल पाता।
 - ब – दुःखों का उद्गम – बौद्ध दर्शन में दुःखों का उद्गम अविद्या अज्ञान माना है।
 - स – दुःखों का निवारण – बौद्ध दर्शन का विश्वास है कि मानव के दुःखों का निवारण किया जा सकता है। दुःखों के निवारण से ही निर्वाण या मोक्ष प्राप्त की जा सकती है।
 - द – दुःख निवारण मार्ग – दुःखों का मूल कारण तृष्णा है। तृष्णा को समूल नष्ट करने का मार्ग अष्टांगिक मार्ग है। बौद्ध धर्म में दुःखों के निवारण हेतु अष्टांग मार्ग के अनुसरण का विधान किया गया है।
2. अष्टांगिक मार्ग – अष्टांग मार्ग के अनुसर मनुष्य को न तो कठोर तपस्या व कठिन व्रत से शरीर को कष्ट देना चाहिए और न ही सांसारिक सुखों में लीन रहना चाहिए। इसलिए सर्वत्र त्याग करते हुए निम्नांकित अष्टांग मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।

- (1) सम्यक दृष्टि :- चार आर्य सत्यों को सदैव याद रखना सम्यक दृष्टि है।
- (2) सम्यक संकल्प :- सांसारिक भोग-विलास एवं सुखों की कामना का परित्याग तथा आत्मपरिष्कार ही संकल्प का दूसरा मार्ग है।
- (3) सम्यक वाक :- सदैव सत्य भाषण एवं असत्य बोलने का त्याग सम्यक वाक् कहलाता है।
- (4) सम्यक कर्मान्त:- इसका अभिप्राय शुभ कार्य करने से है जो सदाचार का आधार है।
- (5) सम्यक आजीव :- जीवन यापन में ईमानदारी का व्यवहार तथा न्यायोचित ढंग से जीविका अर्जित करना आजीव है।
- (6) सम्यक भाव :- मनुष्य को असद् प्रवृत्तियों के दमन तथा सदप्रवृत्तियों का सदैव यत्न करना चाहिए।
- (7) सम्यक स्मृति :- बुद्ध के उपदेशों को स्मरण रखना तथा मन-वचन तथा कर्म से उन्हें क्रियान्विति करना सम्यक स्मृति है।
- (8) सम्यक समाधि :- मन को एकाग्र करके परमानन्द प्राप्त करना समाधि है।

3. चार मूल सिद्धान्त- बौद्ध धर्म के चार मूल सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :-

1. प्रतीत्यसमुत्पाद - महात्मा बुद्ध के अनुसार जो व्यक्ति प्रतीत्यसमुत्पाद को समझता है वह धर्म को समझता है इस सिद्धान्त से तात्पर्य है एक वस्तु दूसरी वस्तु का कारण होती है जैसे मिट्टी घड़े का कारण है और आग धुएँ का इसमें वस्तु या द्रव्य तो प्रमुख है और प्रतीत होने वाले रूप, रस आदि उसके गुण किन्तु बौद्ध दर्शन द्रव्य को नहीं मानता उसके अनुसार प्रतीत होने वाला जगत् धर्ममात्र है अर्थात् रूप, रस आदि तो है किन्तु उनका आधार कोई द्रव्य नहीं है। इस दर्शन के अनुसार यहां केवल अवस्थाएं हैं और वे एक के पश्चात् दूसरी आती रहती हैं। वर्तमान अवस्था अतीत अवस्था का आश्रय लेकर अस्तित्व में आई और नई व्यवस्था का सहारा बनकर लुप्त हो गई इसी का नाम प्रतीत्यसमुत्पाद है।
2. कर्मवाद - इससे आशय है कि हम जो भोगते हैं वह हमारे ही कर्म का स्वाभाविक फल है किसी बाह्य सत्ता का उस पर नियंत्रण नहीं होता। दुःखों का अन्त करने की दृष्टि से बुद्ध ने कहा है कि अपने उद्धारक स्वयं बनो जब तक दुःखों के कारणों का नाश नहीं होता, कोई तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता।
3. नश्वरता या क्षणभंगुरता - नश्वरता तीसरा सिद्धान्त है। महात्मा बुद्ध के अनुसार प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है किसी वस्तु का स्वरूप स्थायी नहीं है। वह परिवर्तित होती रहती है।
4. अनात्मवाद - गौतम बुद्ध आत्मा के शाश्वत अस्तित्व को नहीं मानते उनके अनुसार हमारा व्यक्तित्व कुछ मानसिक धाराओं का प्रवाहमात्र है। कभी ज्ञान होता है कभी अच्छा होता है। कभी सुख-दुःख की अनुभूति होती है और यह प्रवाह निर्वाण प्राप्त न होने तक चलता रहता है। यही अनात्मवाद है।

प्रश्न 25:

बौद्ध दर्शन के अनुसार शैक्षिक उद्देश्य पाठ्यक्रम व शिक्षण विधियों की विवेचना किजिए।
Give a detail description of the different teaching methods, educational objectives and syllabus. according to Boddh Darshan?

उत्तर

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं और उपदेशों का उनके शिष्यों ने व्यापक प्रचार किया। उनके शिष्यों हेतु बौद्ध संघ के सदस्य निश्चित नियमों से निर्देशित होते थे उनके कर्तव्यों अथवा

कार्यों का समुचित निर्धारण किया गया था शिक्षा प्रदान करने हेतु शिक्षा केन्द्रों के रूप में विहारों की स्थापना की गई जिनमें बिना जाति-भेद के सभी को समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाती थी। बौद्ध युग के प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे – गया, कुशीनगर, वैशाली, श्रावस्ती, नालन्दा, वाराणसी, पाटलीपुत्र आदि ।

शिक्षा के उद्देश्य :-

1. शिक्षा के माध्यम से समस्त प्रकार की अज्ञानता को दूर किया जाये जिससे दुःखों से निवृत्ति मिल सके।
2. शिक्षा के द्वारा बालकों में उच्च स्तर पर चिन्तन, मनन व तर्क की क्षमता का विकास हो।
3. शिक्षा के माध्यम से उच्च नैतिक व चारित्रिक मूल्यों को स्थापित किया जाये।
4. शिक्षा के माध्यम से बालकों को अष्टांगिक मार्ग की जानकारी दी जाये।
5. शिक्षा के माध्यम से महात्मा बुद्ध के उपदेशों का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।
6. शिक्षा के माध्यम से बालक को चार आर्य सत्यों के दर्शन करवाये जाने चाहिए।
7. शिक्षा के माध्यम से बालकों में मानव एकता का आभास कराना, उनमें जाति-पाति के भेदभावों के प्रति विरक्ति उत्पन्न करना।
8. शिक्षा के माध्यम से उनमें सांसारिक वैभव के प्रति तुच्छता का भाव उत्पन्न कर उन्हें आध्यात्मिक कल्याण के पथ पर अग्रसर करना।

पाठ्यक्रम

बौद्धकालीन शिक्षा वर्तमान युग के समान औपचारिक शिक्षा नहीं थी। शिक्षा बौद्ध मठों में दी जाती थी। समस्त शिक्षा केन्द्रों में आध्यात्मिक शिक्षा अर्थात् निर्वाण प्राप्ति की शिक्षा पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी।

1. धार्मिक शिक्षा- चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, जन्म-जरा-मृत्यु का बन्धन आदि की शिक्षा
2. भौतिक शिक्षा – ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्ग के छात्रों को चार वेद एवं अठारह शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी।
3. व्यावहारिक विषयों का ज्ञान – युद्ध कला, खगोल, ज्योतिष एवं चिकित्सा मुख्य विषय होते थे।
4. बौद्ध धर्म का प्रचार – बौद्धकालीन शिक्षा प्रचार-प्रसार भी पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा था।
5. सत्य मार्ग की खोज – सत्यमार्ग की खोज हेतु अष्टांगिक मार्ग की शिक्षा दी जाती थी। जिसके द्वारा शिष्य में सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक जीवन, सम्यक व्यायाम आदि की शिक्षा साथ ही बौद्ध विहारों एवं मठों में सिलाई, भवन निर्माण, आयुर्वेद, ज्योतिष, उद्योग तथा अन्य भौतिक विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी।

शिक्षण विधियाँ :- बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में निम्नांकित शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता था-

- | | | |
|-------------------|-------------------|-------------------|
| 1) व्याख्यान विधि | 2) वार्तालाप विधि | 3) वाद-विवाद विधि |
| 4) मौखिक विधि | 5) भ्रमण विधि | |

बौद्धकाल में अध्यापक एवं शिष्य के मध्य सम्बन्ध अत्यन्त मधुर व निकट के थे। गुरु अपने शिष्यों के प्रति पिता तुल्य व्यवहार करता था। तथा शिष्य भी गुरु को पूर्ण सम्मान देते थे। वे गुरु की सेवा करते थे। तथा उनके अनुरूप समुचित रूप से कर्तव्य पालन पर ध्यान देते थे। अध्यापक अपने शिष्यों को निर्वाण प्राप्ति के योग्य बनाने के लिए उनके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास पर बल देते थे। शिष्यों को दस नियमों का पालन करना अनिवार्य था। ये दस

नियम थे – ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, धर्म में श्रद्धा, मध्यान्तर भोजन का निषेध, विकास से विरक्ति, सुगन्धित द्रव्यों का निषेध, सुखप्रद शैय्या तथा आसन का परित्याग तथा स्वर्ण एवं चांदी आदि मूल्यवान वस्तुओं का अस्वीकार करना।

प्रश्न 26

जैन दर्शन का शैक्षिक योगदान स्पष्ट किजिए ।

Specify the main educational contribution of Jain darshan?

उत्तर

जैन शब्द 'जिन' से बना है जिन का अर्थ है जयति इति जिनः अर्थात् जो कर्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है वह जिन है और कालान्तर में जिन धर्म के अनुयायी जैन कहलाने लगे जो आत्मा कर्मरूपी शत्रुओं अर्थात् मन, माया, लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध, राग-द्वेष आदि पर विजय प्राप्त कर पंच महाव्रत एवं त्रिरत्न का पालन कर उच्च कर नैतिकता प्राप्त का रागद्वेष आदि से मुक्त हो जाता है। वह जिन है जिन जैन तीर्थकरों का पर्यायवाची भी है।

शिक्षा के उद्देश्य :-

1. शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में दूसरों के विचारों व दृष्टिकोण का आदर करने की भावना का विकास करना।
2. शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में सहनशीलता व सहिष्णुता के गुणों का विकास करना।
3. शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को उदार चित वाला बनाना ताकि वह अपने संकुचित विचारों से ऊंचा उठ सके।
4. विद्यार्थियों में प्रजातांत्रिक गुणों का विकास करना।
5. शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे अहिंसा, सत्य अस्तेय, संयम एवं आवश्यकता से अधिक संग्रह न करने सके सम्बन्ध में पांच व्रतों के महत्व को समझे तथा इन व्रतों को अपने व्यावहारिक जीवन में अपनाएं।

जैन दर्शन एवं पाठ्यक्रम

जैन दर्शन के अनुसार पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम को मुख्यतः दो भागों में विभक्त करता है। (1)

भौतिक विषयों का ज्ञान (2) आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान

- 1) आध्यात्मिक विषयों का अध्ययन – जैन दर्शन के अन्तर्गत आध्यात्मिक विषयों का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जाता है।
 - अ) आगम ग्रन्थ— जैन दर्शन में आगम ग्रन्थों का प्रमुख स्थान है ये ग्रन्थ आगम सिद्धांत के नाम से जाने जाते हैं। आगम ग्रन्थ सिद्धांतों को जैन धर्म के दोनो ही सम्प्रदाय दिगम्बर एवं श्वेताम्बर समान रूप से स्वीकार करते हैं।
 - ब) चरित्र एवं प्रबन्ध ग्रन्थ— आगम ग्रन्थों के पश्चात् चारित्रिक ग्रन्थों का स्थान है चारित्रिक ग्रन्थों में तीर्थकर एवं मुनियों के जीवन से सम्बन्धित वर्णन मिलता है।

उक्त ग्रन्थों के माध्यम से बालकों में अहिंसा व्रत एवं कठोर जीवनयापन की भावना जाग्रत करना है। जैन दर्शन के अनुसार व्यक्ति के जीवन को उन्नतिशील बनाने वाला ज्ञान ही सच्चा या वैध ज्ञान है।

- 2) भौतिक विषयों का अध्ययन :-आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ जैन दर्शन के अनुसार भौतिक विषयों का भी पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान है। तर्कशास्त्र, इतिहास, व्याकरण, दर्शन, काव्य, योग आदि को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। ललितकला, वास्तुकला और शिल्पकला भी पाठ्यक्रम अंग है।

जैन दर्शन एवं शिक्षण विधियां

जैन दर्शन के अनुसार कर्म बन्धन को ज्ञान के माध्यम से ही काटा जा सकता है। ज्ञान वह तलवार है जो कर्म रूपी बन्धन को काटने की सामर्थ्य रखती है। ज्ञान की प्राप्ति शिक्षा द्वारा

ही सम्भव है। जैन साहित्य के अध्ययन एवं पठन से निम्नलिखित शिक्षण विधियों का संकेत मिलता है।

- | | | |
|-------------------|---------------------|-------------------|
| 1) व्याख्यान विधि | 2) वार्तालाप विधि | 3) स्वाध्याय विधि |
| 4) मौखिक दर्शन | 5) अनुप्रेक्षा विधि | |

जैन दर्शन एवं गुरु शिष्य सम्बन्ध – गुरु शिष्य सम्बन्ध पिता-पुत्रवत् होते थे अनुशासन कठोर था और जीवन संयमित व्यतीत करना पड़ता था। मठों की स्वच्छता, साज-सज्जा, साफ-सफाई आदि का भार शिष्य के कंधों पर रहता था। वह गुरु की तन-मन से सेवा करता था। गुरु भी शिष्य को पुत्रवत् स्नेह करता था।

जैन दर्शन के अनुसार शिष्य को गुरु के प्रति समर्पण की भावना रखनी चाहिए। उसमें विनम्रता, आज्ञाकारिता आदि गुण होने चाहिए। गुरु शिष्य सम्बन्ध मधुर एवं पारिवारिक होते थे। विद्योध्ययन गणेश चतुर्थी के दिन प्रारम्भ होता है। और विद्या समाप्ति पश्चात् विदाई समारोह मनाया जाता था। इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार गुरु शिष्य सम्बन्ध पूर्णतः पारिवारिक भावना पर आधारित होते थे।

प्रश्न 27:

न्याय दर्शन के अनुसार शैक्षिक महत्व की क्या अवधारणा है।

What is the concept of educational importance according to Nyay Darshan

उत्तर

न्याय दर्शन के प्रवर्तक गौतम है। न्याय दर्शन को अक्षपाद हेतु विद्या वाद विद्या भी कहा जाता है। न्याय का अर्थ है वह प्रक्रिया जिसके द्वारा मस्तिष्क एक निष्कर्ष पर पहुंचे। किन्तु उचित निष्कर्ष पर पहुंचना तो तर्क करना है। वस्तुतः न्याय दर्शन तर्क विद्या का प्रतिपादन करने वाला दर्शन है इसलिए इसे तर्कशास्त्र भी कहा जाता है।

न्याय दर्शन का शैक्षिक महत्व – न्याय दर्शन के प्रारम्भिक सूत्र में कहा गया है कि 16 पदार्थों का तत्व ज्ञान नीःश्रेयस या मोक्ष प्राप्ति का साधन है। न्याय दर्शन के अन्तर्गत ज्ञान के लिए योग साधन मार्ग को आवश्यक माना है। और योग साधना के लिए स्वस्थ शरीर तथा नैतिक आचरण की आवश्यकता है। इस प्रकार न्याय दर्शन के अनुसार शारीरिक गुणों तथा नैतिक आचरणों का विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना जाता है।

न्याय दर्शन के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य

- (1) यथार्थ ज्ञान प्रदान करना।
- (2) आध्यात्मिक विकास करना – इसमें व्यक्ति को आत्मा, जीव, ईश्वर, जगत तथा सद्विचार से ज्ञान का विकास करना होता है।
- (3) मोक्ष प्राप्त करना – इसमें व्यक्ति की दुःख निवृत्ति को महत्व है तथा इसे जीवन का उत्तम लक्ष्य माना है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम – न्याय दर्शन के अनुसार पाठ्यक्रम में धर्म और नीति प्राणायाम, आसन तथा इन्द्रिय प्रशिक्षण, मानसिक व भौतिक विकास हेतु भाषा, साहित्य, गणित, योगदर्शन तथा तर्कशास्त्र को महत्व दिया जाना चाहिए साथ ही वेद सम्बन्धी ज्ञान तर्क को प्रधानता दी गई है। इसके अनुसार पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु की प्रामाणिकता को महत्व दिया गया है।

शिक्षण विधियां – न्याय दर्शन ने ज्ञान प्राप्त करने के सोपानों का उल्लेख किया है। जिसका सम्बन्ध सीधा शिक्षण विधियों से होता है। इसके अनुसार ज्ञान वस्तु से इन्द्रियों को, इन्द्रियों से मन को, मन से अहम को अहम से बुद्धि को तथा बुद्धि से आत्मा को प्राप्त होता है। न्याय दर्शन में आत्मा के विकास से प्राथमिकता दी गई है। और इसके लिए चार प्रमुख विधियों को दिया गया है।

प्रत्यक्ष विधि, अनुमान विधि, उपमान विधि तथा शब्द विधि।

प्रत्यक्ष शिक्षण विधि – इसको मनोवैज्ञानिक पद्धति भी कहते हैं।

अनुमान शिक्षण विधि – प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित है और उसके विकास में सहायक है अनुमान विधि से वस्तुओं की गति का बोध होता है गति के साथ-साथ वस्तुओं के गुणों का भी बोध होता है।

उपमान शिक्षण विधि – यह विधि उपर उल्लेखित दोनों विधियों का विस्तार रूप है इस विधि का भी तभी प्रयोग सम्भव हो पाता है जबकि ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान के रूप में दिया जा चुका है।

शब्द शिक्षण विधि – इस विधि के अन्तर्गत मौखिक तथा लिखित शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा शब्दों के माध्यम से वस्तुओं का बोध किया जाता है।

न्याय दर्शन के अनुसार गुरु शिष्य की भूमिका – न्याय दर्शन के अन्तर्गत नीतिशास्त्र को महत्व दिया गया है। न्याय का अधिकारी गुरु माना गया और गुरु से यह अपेक्षा की गई कि उसे अपने विषय का यथार्थ ज्ञान हो और उसके स्वरूप को भली प्रकार समझे। गुरु द्वारा शिष्यों को शिक्षण के समय कोई भेदभाव नहीं रखना चाहिए। शिष्यों को गुरु के प्रति आदर तथा सम्मान का भाव रखना अपेक्षित माना गया है। गुरु को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अष्टांग योग मार्ग से किन शिष्यों ने सिद्धिया प्राप्त की है।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध निकट का होना चाहिए। गुरु का आदर शिष्य करे और गुरु शिष्य को संवाद (उपदेश) करें। संवाद व उपदेश दोनों शब्द समीपता के बोधक है। इससे संकेत मिलता है कि गुरु व शिष्य में पारस्परिक आदर-प्रेम का भाव पाया जाता है। न्याय दर्शन के अनुसार गुरु और शिष्य दोनों के द्वारा दमनवादी सिद्धान्त का पालन करना श्रेष्ठ बताया गया है यही सुकर्म है। जिससे दुःखों का नाश किया जा सकता है। इसे आत्म-संस्कार भी कहते हैं। जो मुक्ति का साधन है।

प्रश्न 28

अद्वैत दर्शन पर आधारित शिक्षा पद्धति को समझाइये ?

Explain in detail the educational policy on Advait Darshan?

उत्तर

अद्वैत वेदान्त दार्शनिक जगत की अद्वितीय देन है शंकराचार्य के पूर्व और पश्चात् भारत में कितने ही दार्शनिक मत स्थापित हुए जो कि विभिन्न क्षेत्रों में अद्वितीय सिद्ध हुए। परन्तु सर्वांगीण दार्शनिक दृष्टिकोण से जो स्थान अद्वैत दर्शन का है वह किसी का भी नहीं है। इसके अन्तर्गत शंकराचार्य के गूढ़ विचारों से भरी हुई रचनाओं को दिया गया है जो अत्यन्त सुक्ष्म अन्तर्दृष्टि और आध्यात्मिकता से युक्त है।

अद्वैत दर्शन पर आधारित शिक्षा

शंकराचार्य जीवन और शिक्षा को एकरूप मानते हैं। उनके अनुसार जीवन की अवधारणा मात्र भौतिक सुख समृद्धि को भोग करने के लिए ही नहीं हुयी है। वरन् ज्ञानार्जन के लिए भी हुई है। अतः शिक्षा और जीवन में पार्थक्य न होकर अभेद है इस प्रकार शंकराचार्य जीवन और शिक्षा के गहन सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। और दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रित मानकर श्रेष्ठ जीवन को सुशिक्षा का फल स्वीकार करते हैं। वे शिक्षा के महत्व को व्यक्ति और समाज दोनों के सन्दर्भ में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार शिक्षा से व्यक्ति को अमरत्व (मोक्ष) प्राप्त होता है।

शिक्षा का अर्थ – शंकराचार्य ने ब्रह्म ज्ञान को शिक्षा माना है साथ ही शिक्षा की प्रक्रिया भौतिक तथा आध्यात्मिक होनी चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य – आध्यात्मिक विकास को शिक्षा का उद्देश्य माना है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम – शिक्षा के पाठ्यक्रम में ब्रह्म ज्ञान को प्रमुख स्थान दिया है। जगत के ज्ञान को महत्व नहीं दिया है। पाठ्यक्रम में वेदों के ज्ञान के साथ-साथ दर्शन के तीन मूल तत्व चित्, अचित् तथा ईश्वर के ज्ञान को सम्मिलित करने पर जोर दिया है।

शिक्षण विधियाँ – अद्वैत दर्शन में आगमन तथा निगमन दोनो विधियों को प्रयुक्त किया जाता है।

गुरु –शिष्य की भूमिका – अद्वैत दर्शन में गुरु की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है और शिष्य के सर्वांगीण विकास को महत्व दिया गया है। शंकराचार्य ने ब्रह्म ज्ञान को तर्क तथा श्रुति के आधार पर दिया जाए गुरु द्वारा शिष्यों को ईश्वर की उपासना और ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दी जाए। गुरु को आध्यात्मिक ज्ञान का बोध होना आवश्यक है। शिष्यों में नैतिक आचरणों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

प्रश्न 29 श्रीमद्भगवद्गीता की तत्वमीमांसा को बताइये। कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग को समझाइये।

Explain the metaphysics of Shrimadbhagwadgita also give an explanation of Karma yoga, Gyanyoga, and Bhaktiyoga?

उत्तर

भगवद्गीता को ईश्वर-संगीत कहा गया है क्यों कि भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं निर्देश किया है। गीता को उपनिषदों का सार कहा गया है। गीता में उपनिषद् के सत्यों की सरल, स्पष्ट और ओजस्वी शब्दों में सामने रखती है। अतः गीता का भारतीय दर्शन में ही बड़ा महत्व रहा है। भगवद्गीता को उपनिषदों का निचोड़ माना जाता है।

भगवद्गीता में 18 अध्याय तथा 700 श्लोक हैं तथा यह महाभारत का अंग है। भगवद्गीता को उपनिषदों का निचोड़ माना जाता है। परन्तु भगवद्गीता में उपनिषदों की पुनरावृत्ति न होकर उससे आगे विकास किया गया है। भगवद्गीता में कर्म योग, ज्ञान योग तथा भक्ति योग तीनों को महत्व दिया गया है। तथा इसमें समन्वय भी किया गया है। जब कि उपनिषदों में केवल ज्ञान योग को ही महत्व दिया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता की तत्वमीमांसा –

गीता के अन्तर्गत ईश्वर ही परम द्रव्य माना गया है तथा इसी से विश्व की उत्पत्ति तथा विनाश है ईश्वर ही विश्व की नैतिक व्यवस्था करता है। तथा जीवों को कर्मों के अनुसार सुख-दुःख प्रदान करता है। ईश्वर ही कर्म फल दाता है। गीता में ईश्वर को 'पुरुषोत्तम' कहा गया है। ईश्वर को पुरुषोत्तम, वासुदेव, प्रभु या साक्षी, द्रष्टा, ब्रह्म, परम पुरुष, विष्णु कहा गया है। परमपुरुष या पुरुषोत्तम ही सांसारिक वस्तुओं की उत्पत्ति स्थिति और लय का कारण है। पुरुषोत्तम निर्गुण, सगुण, निराकार, साकार सब कुछ है। पुरुषोत्तम से परे कुछ भी नहीं है। ईश्वर को अक्षर, परम ज्ञानी, जगत का परम निधान तथा सनातन पुरुष कहा गया है। ईश्वर विश्व में व्याप्त है। गीता में ईश्वरवाद का ही समर्थन हुआ है।

गीता की तत्वमीमांसा को समझने के लिए तीन तत्वों को समझना आवश्यक है। जिसकी मीमांसा गीता के अन्दर की गई है – कर्म योग, ज्ञान योग तथा भक्ति योग।

(1) कर्म योग – कर्म योग ही गीता का मुख्या उपदेश है। निष्काम कर्म ही कर्म योग है। अनासक्त कर्म ही कर्म योग है। गीता में कर्म दो प्रकार का माना गया है। आसक्त कर्म तथा अनासक्त कर्म। असाक्ति ही कर्म करने के लिए प्रेरित करती है। परन्तु कर्म योगी को आसक्ति पर विजय करनी चाहिए। बिना फल की इच्छा के कर्म करना चाहिए। कर्म योगी लाभ-हानि की भावना से प्रेरित नहीं होता ऐसे कर्म को अनासक्त कर्म कहते हैं।

गीता में कर्म को सकाम तथा निष्काम भी माना गया है। सकाम कर्म आसक्त कर्म की तरह फल पाने की इच्छा वाला होता है। तथा निष्काम कर्म अनासक्त कर्म की

तरह फल की इच्छा न करने वाला होता है। निष्काम कर्म से बन्धन नहीं होता है। निष्काम कर्म को गीता में कर्म योग माना है। निष्काम कर्म ईश्वरार्थ कर्म है। और ईश्वरार्थ कर्म ही अनासक्त कर्म है। ऐसा पुरुष ही कर्म करते हुए पापों से लिप्त नहीं होता।

- (2) ज्ञान योग :- इस संसार में ज्ञान के समान और कोई भी वस्तु पवित्र नहीं है। ज्ञान योगी सभी जीवात्माओं को परमात्मा का स्वरूप समझता है। ज्ञान योग निवृत्ति मार्ग पर अधिक बल देता है। अपने सभी कर्मों, इच्छाओं तथा आंकाक्षाओं को तथा स्वयं अपने को परमात्मा को अर्पित कर देना ही गीता का ज्ञान योग है। ज्ञानी व्यक्ति के लिए संसार का आकर्षण मृगतृष्णा के समान है केवल ब्रह्म ही सत्य, जगत् मिथ्या है। आत्मा ही ब्रह्म है। तथा ब्रह्म ही आत्मा है ज्ञानयोग की सबसे बड़ी विशेषता समत्व योग की है इसे गीता में स्थितप्रज्ञ कहते हैं। स्थितप्रज्ञ का अर्थ है जिसकी बुद्धिस्थिर हो गई हो ऐसे व्यक्ति की सभी कामनाएं तथा इच्छाएं समाप्त हो गई हो ऐसे व्यक्ति की सभी कामनाएं तथा इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं, वह परमात्मा में संतुष्ट रहता है। वह सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार समझता है। वह सुख –दुःख, लाभ–हानि तथा जय–पराजय में समान रहता है।

गीता में ज्ञान दो प्रकार का माना गया है—तार्किक ज्ञान तथा आध्यात्मिक ज्ञान तार्किक ज्ञान में वस्तु के बाह्य रूप की व्याख्या बुद्धि के द्वारा की जाती है। इसे विज्ञान भी कहते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है न कि विज्ञान। इसमें ज्ञाता और ज्ञेय दोनों एक ही हो जाते हैं।

- (3) भक्ति योग – किसी को अपने से उत्कृष्ट सत्ता मानकर उसके सामने श्रद्धापूर्वक झुकना और उसके अनुकूल व्यवहार करना भक्ति कहलाता है। विद्वानों ने भक्ति शब्द का प्रयोग ईश्वर के प्रति निष्कामप्रेम या अनन्य अनुराग के लिए किया है। ईश्वर के प्रति परम अनुराग भक्ति है। गीता में कृष्ण –भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसके अनुसार ईश्वर की शरण में जाना ही भक्ति है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि सम्पूर्ण धर्मों का मुझमें अर्पण करके मेरी शरण में आओ। भक्तियोग के सहारे भक्त भगवान का सामीप्य चाहता है। भक्त भगवान के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। भक्ति मार्ग में ब्रह्म के साकार रूप या सगुण रूप की उपासना होती है।

प्रश्न 30

गीता दर्शन में वर्णित शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां को स्पष्ट करते हुए गुरु–शिष्य सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

Explain the teacher-student relationship keeping in view the different teaching objectives, syllabus teaching methodologies as found in Geta Darshan?

उत्तर

श्रीमद्भगवद्गीता के अन्तर्गत शिक्षण प्रक्रिया के साथ परामर्श और निर्देशन को भी महत्व दिया गया है और शिक्षा के सभी घटकों के स्वरूप को दिया गया है। गीता का ज्ञान एक संवाद के रूप में दिया गया है।

शिक्षा का अर्थ – शिक्षा को गीता मुक्ति का साधन मानती है। गीता के अन्तर्गत कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्ति योग तीनों को महत्व दिया गया है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य को स्थितप्रज्ञ की अवस्था तक पहुंचाती है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति को ही मुक्ति या मोक्ष प्राप्त होता है। ज्ञान और कर्म का योग ही जीवन की शिक्षा प्रणाली बनाती है। जिसे सच्ची शिक्षा माना गया है। शिक्षा को जीवन की निरन्तर प्रक्रिया भी माना गया है शिक्षा प्राप्त करना एक श्रेष्ठ तथा पवित्र कर्म माना गया है। संसार में शिक्षा से बढ़कर कोई पवित्र वस्तु नहीं है। गीता में शिक्षा को जन्म–जन्मान्तर तक चलने वाली प्रक्रिया माना गया है।

शिक्षा के उद्देश्य :-

1. सद्गुणों का विकास करना।
2. आध्यात्मिक ज्ञान का विकास करना।
3. आध्यात्मिक योग की अनुभूति करना।
4. अमरता की प्राप्ति
5. परोपकार तथा सेवा से सामाजिक गुणों का विकास करना।
6. मुक्ति तथा शुद्धि करना।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

भगवद्गीता ज्ञान की अपेक्षा आचरण का विषय है। इसलिए गीता में पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार प्रत्यक्ष रूप में नहीं मिलते अपितु उनका संकेत ही मिलता है। गीता के अनुसार पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :- पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पाठ्यवस्तु को सम्मिलित किया जाता है। इसमें वेद, उपनिषद्, नीतिशास्त्र तथा पुराण हैं। इसके साथ इसमें नैतिक, सामाजिक तथा सांसारिक विषयवस्तु को सम्मिलित किया गया है। सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्रियाओं को सम्मिलित किया गया है। गीता में उपनिषदों की परा व अपरा विद्या की ओर संकेत किया गया है। पाठ्यक्रम में सांसारिक और आध्यात्मिक ज्ञान को सम्मिलित किया जाए। पाठ्यक्रम की पूर्णता दोनों प्रकार के ज्ञानों को सम्मिलित करने से हो सकती है।

शिक्षण विधियां

1. **कर्मयोग विधि** – इस विधि के अन्तर्गत अभ्यास के लिए इन्द्रियों का प्रशिक्षण किया जाता है और उनमें स्वभाव के अनुसार कार्य करने का अवसर दिया जाता है।
2. **ज्ञानयोग विधि** – इस विधि में आगमन तथा निगमन विधियों को प्रधानता दी गई है।
3. **भक्तियोग** – इस विधि के अन्तर्गत योगविधि, भक्ति विधि, समर्पण विधि, संयम विधि, मुक्ति के साधन तथा शुद्धता की विधि आदि।

गुरु-शिष्य की भूमिका –

गीता में गुरु-शिष्य के मध्य संशय होने पर संवाद होता है। शिष्य प्रश्नों की सहायता से अपने संशयों का निवारण करने का प्रयास करता है शिष्य के अन्दर आत्मिक तथ दैवी शक्तियां होती हैं। शिष्य में सात्विक गुणों की अपेक्षा की जाती है। गुरु शिष्य में उत्तम गुणों का विकास करता है। शिष्यों में गुरु के प्रति निष्ठा का भाव हो और उसे जिज्ञासु होना चाहिए। गीता में गुरु को एक महान् व्यक्ति माना गया है। जिसमें विभिन्न गुणों का समावेश होता है। शिष्य को गुरु में पूरी आस्था होती है।

गुरु अपने शिष्य को एक भक्त तथा सखा मानता है, गुरु अपने शिष्य को इस आत्मविश्वास के साथ उपदेश देता है, उत्साह बढ़ाता है तथा उसे जीवन में संघर्ष करने लिए तैयार करता है कि शिष्य उसका सखा तथा सहायक है। गुरु शिष्य की सफलता का साधन होता है। गुरु भगवान के समान आदरणीय माना है। गुरु और शिष्य के मध्य सुसम्बन्धों की अपेक्षा की गई है। गुरु शिष्य को तामसिक परावर्तन से शुद्ध करता है। गुरु शिष्य को सभी पापों तथा दुःखों से मुक्त करता है।

प्रश्न 31

इस्लाम दर्शन के अनुसार शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य एवं पाठ्यवस्तु के स्वरूप के साथ शिक्षण विधियों को बताइये।

Explain the meaning of education objectives, content matter of syllabus according to Islam Darshan & also explain the educational policies in Islam.

उत्तर

भारत में मध्य युग में इस्लाम का आगमन हुआ जिसने भारतीय समाज-संस्कृति एवं विचारधारा की चिन्तन के नए तत्व देकर नई शिक्षा दर्शन का सूत्रपात किया। फलतः इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों के अनुकूल शिक्षा का संगठन किया गया और उसके अर्थ, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विधि, संस्था, विद्यार्थी, अध्यापक एवं अनेक सम्बन्ध के बारे में नई अवधारणाएँ भी बनीं जिन्हें हम संगठित रूप में इस्लाम शिक्षा दर्शन कहते हैं।

शिक्षा का अर्थ – शिक्षा का अर्थ कुरान में लिखा गया इल्म या ज्ञान है जिसे पढ़ने, सीखने और धारण करने और व्यवहार में प्रयोग करने का समन्वित नाम ही शिक्षा है।

शिक्षा के उद्देश्य – इस्लाम दर्शन एवं परम्पराओं में शिक्षा द्वारा मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास पर बल दिया गया है। इसमें भी सबसे अधिक बल मनुष्यों को कुरान शरीफ के ज्ञान और उसके दिखाए गये मार्ग पर चलने के प्रशिक्षण पर दिया गया है इसके द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य
2. आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास का उद्देश्य
3. सामाजिक विकास का उद्देश्य
4. सांस्कृतिक विकास का उद्देश्य
5. व्यावसायिक, आर्थिक और भौतिक विकास का उद्देश्य
6. इस्लाम धर्म की शिक्षा

शिक्षा का पाठ्यक्रम :-

1. भौतिक विषय – भाषा, साहित्य, भाषा शास्त्र, व्याकरण, समाजविज्ञान, इतिहास, राजनीतिविज्ञान, गणित, ज्योतिष शास्त्र, प्राकृतिक विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, कृषि उद्योग, वाणिज्य, चित्रकला, भवन निर्माण, नक्कासी, शिल्प कौशल और युद्धकला
2. भौतिक क्रियाएं – एक दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार एवं दीन-हीन की सेवा
3. धार्मिक विषय – धर्मशास्त्र (कुरान, हदीसे और अन्य धार्मिक ग्रन्थ) अध्यात्म शास्त्र, इस्लामी दर्शन और शरीयत (इस्लामी कानून) और नसीहतें
4. धार्मिक क्रियाएं- नमाज एवं रोजा

शिक्षण विधियां –

1. उपदेश विधि – सारा कुरान एक प्रकार का उपदेश है।
2. सचेतन अनुकरण विधि – कुरान की आयतें रटाई जाती हैं। इस चेतना के साथ की यह अल्लाह से प्रार्थना स्वरूप है।
3. पुस्तक अध्ययन विधि – इस्लामी शिक्षा का आरम्भ पुस्तक अध्ययन से ही होता है जबकि चन्द्र कलमा का पाठ रब्बानी उलेमा के द्वारा कराया जाता है।
4. व्याख्यान विधि – मकतब एवं मदरसे में व्याख्यान विधि का प्रयोग किया जाता है।
तर्क – तथ्यों को सीधे ग्रहण न करके उनके विषय में 'क्या', 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्न करने अपनी शंकाओं को बार-बार उठाने और तर्क के आधार पर उनका समाधान खोजने की विधि को तर्क विधि कहते हैं।
5. समारोह एवं यात्रा विधि – मस्जिद, ईदगाह, तीर्थ स्थान पर एकत्र होकर शिक्षा ली व दी जाती है। मक्का व मदीना की यात्रा में भी इस्लामी शिक्षा दी जाती है।

शिक्षक :- इस्लाम धर्म में शिक्षक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण कहा जाता है। इसलिए इस्लामी शिक्षा में भी शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। कुरान की आयतों से ज्ञात होता है कि अल्लाह ही सबसे बड़ा शिक्षक है। शिक्षक का कर्तव्य लोगों को कुफ्र के अन्धेरे से निकालकर ईमान के उजाले में लाना है।

शिक्षक के कार्य निम्नलिखित हैं :-

1. इस्लाम का प्रचार-प्रसार करना।

2. नैतिकता का विकास करना।
3. प्राचीन इस्लामी नियमों तथा सामाजिक परम्पराओं को प्रतिपादित करना।
4. नैतिकता से परिपूर्ण कविताएं विद्यार्थियों को कण्ठस्थ कराना।
5. विशिष्ट रूप से मुसलमान अनुनायियों में ज्ञान का प्रसार करना।
6. मानव मुल्यों की शिक्षा प्रदान करना।
7. विद्यार्थियों के चरित्र का विकास करना।
8. विद्यार्थियों को व्यावहारिक जीवन तथा भौतिक लाभों की प्राप्ति के लिए तैयार करना।

शिक्षार्थी का कर्तव्य

इस्लाम धर्म दर्शन में शिक्षार्थियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अल्लाह और पैगम्बर मोहम्मद साहब में विश्वास करें और उनके दिखाए गये मार्ग पर चले वे संयमी और परिश्रमी हो अपने शिक्षकों की आज्ञा का पालन करें। कभी कोई अपराध न करें और यदि भूल से कभी अपराध हो जाए तो उसके लिए तौबा (पश्चाताप) करें।

विद्यालय प्रबन्धन

इस्लामी शिक्षा के लिए प्रारम्भिक और उच्च शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्रों को मकतब तथा उच्च शिक्षा केन्द्रों को मदरसा कहकर पुकारा जाता है।

1. मकतब – इस्लामी शिक्षा में छोटे बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा घर के आस-पास की मस्जिदों में लगे प्रारम्भिक स्कूलों में दी जाती है। ये स्कूल प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के अनुरूप है। इन्हें मकतब कहकर पुकारा जाता है।
मकतब के चार प्रकार होते हैं –
(क) कुरान स्कूल (ख) फारसी स्कूल (ग) फारसी कुरान स्कूल
(घ) अरबी स्कूल
2. मदरसा– इस्लामी उच्च शिक्षा का प्रबन्ध मदरसों में किया जाता था। ये अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्रों के रूप में कार्य करते थे। इन केन्द्रों की स्थापना का उद्देश्य मुस्लिम धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति का संरक्षण व प्रसार करना था। इन मदरसों में शिक्षा का माध्यम अरबी व फारसी भाषाएँ थीं। शिक्षा की व्यवस्था राजाओं के द्वारा दी जाती थी।
3. अनुशासन – इस्लाम धर्म में अनुशासन को बड़ा महत्व दिया गया है। इसके अनुसार मोहम्मद साहब के दिखाए गये मार्ग पर चलना ही सच्चा अनुशासन है। इस अनुशासन का पहला कदम है अपने अन्दर छिपे शैतान को मारना। दूसरा कदम है संयम बरतना और तीसरा कदम है नियमों का पालना करना और भूल होने पर तौबा (पश्चाताप) करना एवं भूलसुधार करना।

प्रश्न 32

कुरान के एकेश्वरवाद से क्या तात्पर्य है ?

What do you understand by Quranic monism?

उत्तर

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब थे। ईसाई धर्म के पश्चात् यह विश्व का सबसे बड़ा धर्म है। मुहम्मद साहब का जन्म 570 ई0 में अरब देश के प्रसिद्ध नगर मक्का में हुआ। 40 वर्ष की आयु में मुहम्मद साहब 'इस्लाम के पैगम्बर' के नाम से विख्यात हुए। इस्लाम धर्म की सबसे पवित्र पुस्तक कुरान है।

कुरान शरीफ के अनुसार इस संसार का जन्मदाता अल्लाह है। और विश्व के जितने भी जीवन हैं वे अल्लाह के बन्दे (दास) हैं। इसी कारण से कुरान में अल्लाह में अटूट आस्था का होना आवश्यक बतलाया गया है। अल्लाह में आस्था के अतिरिक्त किसी भी प्रकार से संसार के निर्माणकर्ता की उपासना करना वर्जित है। अल्लाह के प्रत्येक बन्दे को कयामत के

अन्तिम समय तक अल्लाह के न्याय में विश्वास रखना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को सद-कर्म करने में विश्वास रखना चाहिए। कुरान शरीफ की 11वें अध्याय के अनुसार अल्लाह जड़ और आत्मा से उच्च है। कुरान शरीफ के अनुसार अल्लाह पर सब कुछ आधारित है। वह न उत्पन्न करता है और न ही उत्पन्न किया जाता है। और उनके समान कोई भी नहीं है। इस्लाम के एकेश्वरवाद को इस रूप में समझा जा सकता है कि 'ला इलाह, इल्लिहा मुहमदुरसुल्लिलाह' अर्थात् अल्लाह के सिवाय और कोई पूजनीय नहीं हैं तथा मोहम्मद उसके रसूल (राजदूत) है।

प्रश्न 33 प्रकृतिवाद की तत्त्वमीमासा की विशेषताओं को बताइये ।

Explain the metaphysics of naturalism.

उत्तर प्रकृतिवाद की तत्त्वमीमासा की विशेषताएं –

1. इसके अनुसार अन्तिम सत्य प्रकृति तथा पदार्थ को माना जाता है।
2. इसके अन्तर्गत उर्जा को भी सत्य मानते हैं क्योंकि पदार्थों को उर्जा में परिवर्तित किया जाता है।
3. प्रकृतिवाद को भौतिकवाद भी कहते हैं। जो ज्ञानेन्द्रियों तक ही सीमित है।
4. इसका ईश्वरीय सत्ता में विश्वास नहीं है।
5. प्रकृति और पदार्थ से परे किसी भी सत्ता में इनका विश्वास नहीं है।
6. प्रकृति की सत्ता आन्तरिक की अपेक्षा बाह्य अधिक है।
7. मन और शरीर दो तत्वों के विकास को महत्त्व देता है और इनमें परस्पर निर्भरता का उल्लेख होता है।
8. यह विश्व प्रकृति की एक रचना है और भौतिक संसार ही सत्य है।
9. मनुष्य प्रकृति की सबसे श्रेष्ठ रचना है।
10. मनुष्य का विकास एक प्राकृतिक क्रिया है।
11. प्रकृति संसार में संतुलन बनाये रखती है।

प्रश्न 34 प्रकृतिवाद पर आधारित शिक्षा की विवेचना कीजिए ।

Describe the educational based on naturalism.

उत्तर

शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद का प्रभाव दो रूपों में दिखाई पड़ता है। प्रथम तो उसने दर्शन के रूप में शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को निश्चित किया है। द्वितीय उसने मानव प्रकृति की व्याख्या करके शिक्षण विधियों और शिक्षा के साधनों की व्याख्या की है। प्रकृतिवाद के फलस्वरूप शिक्षा में बाल केन्द्रित शिक्षा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में प्रकृतिवाद न तो भौतिक जगत का प्रकृतिवाद है न यान्त्रिक प्रकृतिवाद और न ही जैवकीय प्रकृतिवाद। इन तीनों से भिन्न वह एक नमनीय व्याख्या है जो कि शिक्षा को बालक के सम्पूर्ण अनुभव पर आधारित करना चाहती है और किताबी ज्ञान के विरुद्ध है।

शिक्षा का अर्थ – प्रकृतिवाद के अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य को उसकी प्रकृति के अनुरूप विकास करके एवं जीवन को सुखमय बनाने में सहायता करती है।

रूसो ने अपनी पुस्तक 'एमील' में शिक्षा की परिभाषा की है जो इस प्रकार है – "बालक की प्रथम बार की शिक्षा विशुद्ध रूप से निषेधात्मक होनी चाहिए। इसमें सत्य और सद्गुण का का शिक्षण बिल्कुल सम्मिलित न होकर बालक के हृदय को अवगुण से तथा मन को त्रुटि से बचाना निहित है"।

शिक्षा के घटक – शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण प्रक्रिया, पाठ्यक्रम का विकास, शिक्षण विधियाँ, शिक्षक की भूमिका, छात्र की भूमिका, विद्यालय प्रबन्धन तथा विद्यालय अनुशासन आदि ।

शिक्षा के उद्देश्य :-

1. बालक का सम्पूर्ण विकास करना ।
2. शारीरिक तथा मानसिक विकास करना ।
3. वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करना ।
4. स्वाभाविक अभिवृद्धि के लिए अवसर प्रदान करना ।
5. स्वास्थ्य के नियमों का बोध करना ।
6. जीविकोपार्जन के कौशलों का विकास करना ।

शिक्षा प्रक्रिया – प्रकृतिवादी शिक्षा की प्रक्रिया इसकी तत्वमीमांसा से अधिक प्रभावित है। रूसो ने प्राकृतिक शिक्षा को ही स्वाभाविक माना और विद्यालय की नियमित एवं कृत्रिम शिक्षा प्रणाली की आलोचना की । उनका मानना था कि प्राकृतिक रूप में प्रत्येक वस्तु सुन्दर होती है परन्तु मनुष्य एवं समाज उसकी सुन्दरता को विकृत कर देता है इसलिए बालक में शिक्षा की प्रक्रिया सामाजिक परिवेश में न होकर प्राकृतिक वातावरण में देना आवश्यक है। शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका गौण होती है। शिक्षक की अपेक्षा छात्र को अधिक क्रियाशील रखने का प्रयास किया जाता है और बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास को ध्यान में रखते हुए उनकी अवस्थाओं के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इस शिक्षण प्रक्रिया में समाज की अपेक्षा बालक के व्यक्तित्व के विकास को विशेष महत्व दिया जाता है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम – प्रकृतिवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान विषयों को प्रधानता दी गई है।

रूसो ने अपनी पुस्तक 'एमील' में बालको की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों की रूपरेखा प्रस्तुत की है ।

1. **शैशवावस्था के लिए पाठ्यक्रम** – शारीरिक स्वास्थ्य व ज्ञानेन्द्रियों के विकास को ध्यान में रखा जाये खेल-कूद को स्थान दिया जाये।
2. **बाल्यावस्था** – 12 वर्ष की आयु तक पुस्तकों से दूर रखा जाये। बाल्यावस्था में खेलने-कूदने तथा उठने-बैठने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। जिससे उन्हें विभिन्न प्रकार के अनुभव प्राप्त हो सके।
3. **किशोरावस्था हेतु** – प्राकृतिक विज्ञान, भाषा, गणित, संगीत, चित्रकला, सामाजिक जीवन तथा हस्तकला सम्बन्धी विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाये।
4. **युवावस्था हेतु पाठ्यक्रम** – नैतिक व धार्मिक शिक्षा को शामिल किया जाये। इस स्तर के पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा, संगीत कला, भौतिक विज्ञान आदि।
प्रकृतिवाद के पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं
 1. पाठ्यक्रम बाल-केन्द्रित होना चाहिए।
 2. शारीरिक एवं मानसिक अभिवृद्धि एवं विकास को महत्त्व
 3. भौतिक विज्ञान के विषयों को प्राथमिकता
 4. विज्ञान द्वारा ज्ञान का विकास होता है।
 5. इसके पाठ्यक्रम में मुख्यतः गणित, भूगर्भ-शास्त्र, भूगोल, जीव विज्ञान को सम्मिलित किया जाता है।

शिक्षण विधियाँ– प्रकृतिवाद में आगमन चिंतन का विशेष उपयोग किया जाता है। करके सीखने (learning by doing) को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसमें व्यक्तिगत शिक्षण विधियों को प्रधानता दी गई है। न कि सामूहिक शिक्षण विधियों को, प्रयोगात्मक विधि तथा प्रयोगशाला विधियाँ महत्त्वपूर्ण है। निरीक्षण –सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया जाता है।

खेल-विधि, कहानी विधि, विश्लेषण विधि प्रमुख हैं तथा उच्च स्तर पर अन्वेषण विधि को भी विशेष महत्व दिया गया है।

अध्यापक की भूमिका – प्रकृतिवादी शिक्षण की प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान गौण माना जाता है, उसके अनुसार शिक्षक की भूमिका, एक निर्देशक, निरीक्षक तथा मित्र की होती है। शिक्षक को अपनी शिक्षण प्रक्रिया बालक के अनुरूप व्यवस्थित करनी चाहिए। शिक्षक को बालकों के लिए ऐसे अवसर प्रदान करता है जिसमें वह स्वतन्त्र रूप से अपनी अभिव्यक्ति कर सके शिक्षक का कार्य यह है कि छात्रों को उनकी रुचियों, योग्यताओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप विकास हेतु समुचित वातावरण उत्पन्न करें बालक को स्वयं अपने अनुभवों द्वारा सीखने का अवसर दिया जाए।

छात्र की भूमिका – प्रकृतिवादी शिक्षा बाल-केन्द्रित मानी गई है। बालकों को उनके अनुभवों द्वारा ही सीखने का अवसर दिया जाए। बालकों की मूल प्रवृत्तियों, रुचियों, योग्यताओं एवं आवश्यकताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। रूसो के अनुसार “बालकों की शिक्षा के लिए शिक्षक द्वारा उनमें जिज्ञासा उत्पन्न करनी चाहिए। इसमें परिणामस्वरूप बालक पदार्थों, जीवों तथा वस्तुओं का अपने अनुभवों द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

विद्यालय प्रबन्धन – प्रकृतिवादी विद्यालय की व्यवस्था को बालक के लिए आवश्यक नहीं मानते, बालक को विद्यालय से अलग समाज से दूर तथा माता-पित से भी दूर प्राकृतिक वातावरण में छोड़ देना चाहिए। शिक्षक का कार्य निरीक्षक का देखभाल का ही हो जिससे वह बालकों को प्राकृतिक आपदाओं तथा दुष्परिणामों से बचा सके। यदि विद्यालयों की व्यवस्था कर दी गई है तो उनके अन्तर्गत प्राकृतिक वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए, जिससे बालकों की योग्यताओं का स्वाभाविक रूप से विकास हो सके।

विद्यालय अनुशासन – प्रकृतिवादी बालक को अनुशासन में रखने के लिए अधिक स्वतन्त्रता देना चाहता है उसके अनुसार बालक पर प्रतिबन्ध कम से कम लगाये जाये। प्रतिबन्ध बालक के विकास में बाधक होते हैं। बालक को किसी भी प्रकार का दण्ड नहीं देना चाहिए। प्रकृतिवाद के अनुसार अनुशासन का अर्थ प्रकृति के नियमों का पालन करना है वह बालकों को अनुशासन सम्बन्धी किसी भी प्रकार के उपदेश देने की आवश्यकता नहीं समझते।

प्रकृतिवादी शिक्षा की समीक्षा – प्रकृतिवादी समाज और राष्ट्र को महत्व न देकर बालक के विकास को अधिक महत्व देते हैं। परन्तु बालक के विकास की दिशा राष्ट्र और समाज ही दे सकता है।

प्रकृतिवादी शिक्षा में मनुष्य की सामाजिक, नैतिक, चारीत्रिक तथा आध्यात्मिक विकास को कोई महत्व नहीं दिया गया है। मूल्यों को भी स्थान नहीं दिया है। प्रकृतिवादी शारीरिक विकास हेतु खेलकूद, व्यायाम तथा भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए विज्ञान की शिक्षा को विशेष महत्व देते हैं।

प्रकृतिवादी भाषा, साहित्य तथा कला की शिक्षा को अधिक महत्व नहीं देते हैं। प्रकृतिवादियों का महत्वपूर्ण स्थान शिक्षण –शास्त्र में रहा है। अधिकांश शिक्षण विधियां प्रकृतिवाद की ही देन हैं।

प्रकृतिवादी शिक्षा में भावात्मक पक्ष को कोई महत्व नहीं दिया गया है इसमें इस बात पर तो बल दिया गया कि बालक को क्या सीखना चाहिए किन्तु क्या नहीं सीखना चाहिए इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया है भावात्मक शिक्षा के बिना एक अच्छा मनुष्य नहीं बनाया जा सकता।

प्रकृतिवाद में अध्यापक का स्थान गौण माना गया है और शिक्षा-प्रक्रिया को बाल-केन्द्रित परन्तु बाल-केन्द्रित शिक्षा की प्रक्रिया की स्पष्ट रूप से व्याख्या नहीं की गई है।

प्रकृतिवाद में स्वतन्त्रता पर अधिक बल दिया गया है परन्तु अधिक स्वतन्त्रता बालकों के लिए हितकर नहीं होती है।

प्रकृतिवाद में अनुशासन के लिए प्राकृतिक परिणामों द्वारा दण्ड की बात कही गई है। प्रकृति का न्याय या प्रकृति का दण्ड नैतिक मूल्यों पर आधारित नहीं होता है इस प्रकार के अनुशासन का सभी ने विरोध किया है।

प्रश्न : 35 आदर्शवाद की ज्ञानमीमांसा की विशेषताएं बताइये ?

Discuss the main characteristics of Epistemology?

उत्तर

आदर्शवाद एक ज्ञान मीमांसा का दर्शन है। तत्वमीमांसा का नहीं इसके अन्तर्गत ज्ञान का विशद विवेचन किया गया है। सुकरात, प्लेटों, डेकार्ट आदि के विचारों ने आदर्शवादी ज्ञान मीमांसा को स्पष्ट किया है। आदर्शवाद की ज्ञान मीमांसा की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :-

1. आदर्शवाद ज्ञानमीमांसा का दर्शन है।
2. इस दर्शन में भाव पक्ष प्रधान है।
3. इसकी ज्ञान मीमांसा को कान्ट तथा बर्कले ने दिया।
4. विश्व की रचना ईश्वर द्वारा की गई जो सार्थक प्रतीत होता है।
5. बौद्धिक ज्ञान एवं चिन्तन ज्ञान ही प्रमुख है।
6. प्रत्यक्षीकरण, समय तथा स्थान घटना तथा वस्तु की गुणवत्ता है।
7. ज्ञान का मुख्य स्रोत निगमन चिन्तन एवं समीक्षा है।
8. इस दर्शन का ज्ञान प्रत्यक्ष तथा अनुमान से भी प्राप्त किया जाता है।

प्रश्न : 36 आदर्शवाद की तत्वमीमांसा को स्पष्ट कीजिए प

Describe the metaphysics of Idealism.

उत्तर

आदर्शवाद में 'विचार' को ही अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। प्रकृति की पृथक सत्ता नहीं है। यह विचार पर आधारित है। विचार ही वह परम तत्व है। जो विश्व पर नियन्त्रण करता है। समस्त विश्व में विचार ही सत् है। विश्व विचार का ही प्रकाशन है। प्रकृति और मनुष्य में विचार के आधार पर ही सम्बन्ध है। इस भौतिक जगत को ही सब कुछ नहीं समझना चाहिए इसके अतिरिक्त एक मानसिक जगत है जो भौतिक जगत से भी अधिक महत्वपूर्ण एवं यथार्थ है। प्लेटो ने इस ब्रह्माण्ड को दो भागों में विभाजित किया है विचार जगत और वस्तु जगत।

आदर्शवाद की तत्वमीमांसा की प्रमुख विशेषताएं :-

1. आदर्शवादी विचार तथा आत्मा को सत्य मानते हैं।
2. इसमें आध्यात्मिक स्वः को प्रधानता देते हैं।
3. आत्मा शरीर का जीवन है।
4. आदर्शवादी आत्मा को निरपेक्ष मानते हैं।
5. आदर्शवादी आत्मा को अनुभूति का विषय मानते हैं।
6. इसमें सत्य की प्रकृति आन्तरिक है।
अ) अद्वैतवादी आत्मा एवं ईश्वर को एक ही मानते हैं।
ब) द्वैतवादी दोनो की सत्ता में विश्वास रखते हैं।
7. आदर्शवादी को बुद्धिवादी दर्शन तथा आध्यात्मिक दर्शन भी कहते हैं।
8. आदर्शवादी शिक्षा के स्वरूप को मनोःकेन्द्रित मानते हैं।
9. आदर्शवाद का असत्य सुनिश्चित तथा सार्वभौमिक है।

10. आदर्शवाद को कई नामों से जाना जाता है जैसे आत्मा, चेतना, अनुभव, अनुभूति तथा निगमन चिन्तन।

प्रश्न : 37

शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि आदि के आधार पर आदर्शवादी शिक्षा की विवेचना कीजिए ?

Describe the idealism education based on the meaning of education, process, syllabus and educational methodology

उत्तर

शिक्षा का सिद्धान्त दर्शन माना जाता है। आदर्शवाद ने प्राचीनकाल से शिक्षा को निर्देशित किया है और शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावित किया है सभी दार्शनिक विचारधाराओं ने अपने-अपने ढंग से शिक्षा को प्रभावित किया परन्तु आज भी शिक्षा के प्रमुख स्वरूप को आदर्शवाद ने ही प्रभावित किया है।

शिक्षा का अर्थ – आदर्शवादी शिक्षा को ज्ञान प्रदान करने की एक प्रमुख क्रिया मानते हैं। शिक्षा को ज्ञान और प्रक्रिया दोनों ही रूपों में स्वीकार किया जाता है। ज्ञान के लिए ज्ञाता और ज्ञेय को अधिक महत्व दिया जाता है। प्लेटों के अनुसार – शिक्षा मनुष्य के शरीर एवं आत्मा को पूर्णता प्रदान करती है।

हरबर्ट के अनुसार – शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संस्कारों का विकास तथा सद्गुणों की प्राप्ति और मनुष्य को मनुष्य बनाने का प्रयास किया जाता है।

शिक्षा के उद्देश्य –

1. शारीरिक विकास – आदर्शवादी शारीरिक विकास को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानते हैं। मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए पहले शारीरिक विकास का होना आवश्यक होता है।
2. नैतिक एवं चारित्रिक विकास – आदर्शवादी नैतिक तथा चारित्रिक विकास को विशेष महत्व देते हैं। हरबर्ट – नैतिक विकास को शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मानता है।
3. बौद्धिक एवं मानसिक विकास – प्लेटों का मानना है – कि बुद्धि के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता और ज्ञान के बिना विवेक पैदा नहीं किया जा सकता है जिससे व्यक्ति शुभ एवं अशुभ में अन्तर नहीं कर सकता।
4. आध्यात्मिक विकास – प्लेटों कहते हैं – कि मनुष्य की प्रकृति सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की होती है। यही जीवन के अन्तिम मूल्य तथा लक्ष्य होते हैं।
5. मनुष्य को मानव बनाना
6. चरित्र का विकास करना
7. आत्मानुभूति का विकास करना।
8. सांस्कृतिक एवं सामाजिक सक्षमता का विकास करना।
9. एक आदर्श नागरिक के गुणों का विकास करना।

शिक्षा की प्रक्रिया – आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का उत्तरदायित्व समाज का माना गया है। और समाज ने ही शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं का सैद्धान्तिक पक्ष दर्शन माना गया है। शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान श्रेष्ठ और छात्रों को एक श्रोता मात्र माना जाता है। शिक्षा की समस्त क्रियाओं का नियंत्रण शिक्षक करता है। छात्र शिक्षक आदर्शों का अनुकरण करता है। छात्र को अपने ढंग से कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं होती है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम – आदर्शवादी शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य (शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक तथा चारित्रिक विकास हैं) इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम में भाषा, साहित्य, धर्म एवं नीतिशास्त्र तथा अन्य भौतिक विज्ञान तथा व्यावसायिक विषयों को

सम्मिलित किया जाए, जिससे मनुष्य को मनुष्य बनाया जा सके और चारित्रिक व नैतिक गुणों का विकास किया जा सके। पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा के साथ-साथ संगीत की शिक्षा को भी महत्व दिया गया।

शिक्षण विधि :- आदर्शवादियों के अनुसार नैतिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया गया। इसके लिए उन्होंने अनुकरण विधि को उपयोगी बनाया। सुकरात ने प्रश्नोत्तर विधि को उपयोगी बताया तो हरबर्ट ने व्याख्यान विधि को। आदर्शवाद के अनुसार योजना विधि भी महत्वपूर्ण है।

1. प्रवचन एवं व्याख्यान विधि अधिक महत्वपूर्ण है।
2. प्रश्नोत्तर विधि का भी उपयोग किया जाता है।
3. अनुकरण विधि का विशेष महत्व है।
4. वाद-विवाद विधि का उपयोग करते हैं।
5. स्व: क्रिया विधि को भी महत्व दिया जाता है।
6. निगमन शिक्षण विधि प्रमुख है।

अध्यापक की भूमिका - आदर्शवादी शिक्षा में शिक्षक का स्थान शिक्षण प्रक्रिया में सर्वोपरि माना गया है। शिक्षक छात्र के जीवन का मार्गदर्शक होता है। शिक्षक छात्रों को वास्तविक ज्ञान देने का प्रयत्न करता है। शिक्षक अपने आचरण से छात्रों में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का विकास करता है। शिक्षक के बिना शिक्षण की प्रक्रिया को अधुरी माना जाता है।

शिक्षक की प्रमुख भूमिकाएं निम्न हैं :-

- शिक्षक अधिक क्रियाशील रहता है तथा छात्र श्रोता होते हैं।
- शिक्षक को आदर्श भूमिका का निर्वहन करना होता है।
- बालक के आत्म विकास तथा चरित्र विकास को महत्व दिया जाता है
- शिक्षक को विषय का स्वामित्व होना चाहिए।
- शिक्षक की भूमिका एक दार्शनिक की होती है।
- शिक्षक को चरित्र विकास, नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का विकास करना चाहिए।

आदर्शवादी शिक्षा की समीक्षा :-

1. आदर्शवादी शिक्षा में दर्शन पर अधिक बल दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा के द्वारा दार्शनिक ही तैयार किये जा सकते हैं।
2. आदर्शवादी शिक्षा में आदर्श तथा मूल्यों पर विचार किया गया है किन्तु उन आदर्शों एवं मूल्यों को प्राप्त करने की विधियों का विवेचन नहीं किया गया है।
3. आदर्शवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में विविधता पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है।
4. आदर्शवादी शिक्षा में प्रयोगात्मक शिक्षण विधियों को अधिक महत्व नहीं दिया बल्कि व्याख्यान व प्रश्नोत्तर विधि को अधिक महत्व दिया गया है।
5. आदर्शवादी शिक्षा प्रणाली में शिक्षक को विशेष स्थान दिया गया है तथा छात्रों की क्रियाशीलता पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है।
6. आदर्शवाद की विचारधारा में सदैव अन्तिम सत्ता की बात की जाती है जिसका ज्ञान प्राप्त करना अधिक कठिन है।
7. आदर्शवादी शिक्षा का उद्देश्य आत्मानुभूति है जबकि सामान्य छात्र शारीरिक अनुभूति तथा सामाजिक अनुभूति तक ही पहुँच पाते हैं। आत्मानुभूति का अभाव अधिकांश शिक्षकों में भी होता है।
8. आदर्शवाद में व्यक्ति एवं समाज एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं जब कि आदर्शवादी वैयक्तिक क्रिया को मुख्य मानते हैं। सामाजिक क्रियाओं को गौण।

इस समीक्षा से स्पष्ट होता है कि आदर्शवाद ही शिक्षा का वास्तविक दर्शन है जिसे शिक्षा का सिद्धान्त कहा जाता है। शिक्षक तथा छात्र का सम्बन्ध बड़ा पवित्र तथा

आध्यात्मिक धरातल पर होता है। शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा मनुष्य को एक आदर्श मनुष्य बनाने का प्रयास किया जाता है। आदर्शवादी शिक्षा में संकल्प शक्ति के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है संकल्प शक्ति का अर्थ होता है व्यक्ति अपने निर्माण में अपने विकास में स्वयं ही योगदान करता है। इसी शक्ति के द्वारा वह समाज का उत्थान भी करता है। व्यक्ति अपनी संकल्प शक्ति से अपना विकास करता है तथा अपने भाग्य का निर्माण भी करता है।

प्रश्न : 38 यथार्थवाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए साथ ही यथार्थवाद व आदर्शवाद में अन्तर बताइए ?
Clarify the meaning of realism. Give the difference between realism and idealism.

उत्तर यथार्थवाद के लिए अंग्रेजी में प्रचलित शब्द हैं **Realism** (रियलिज्म) रियल (**Real**) शब्द ग्रीक भाषा के रेस **Res** से बना है। **Res** शब्द का अर्थ है 'वस्तु' अतः **Real** का अर्थ हुआ वस्तु सम्बन्धी इस प्रकार **Realism** वस्तु के अस्तित्व सम्बन्धी विचारों के प्रति एक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार जगत की वस्तुएं यथार्थ हैं अर्थात् जैसी हमको दिखाई देती है वैसी ही है।

परिभाषाएं :-

स्वामी रामतीर्थ के अनुसार – "यथार्थवाद का अर्थ उस विश्वास और सिद्धान्त से है जो जगत को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा वह दिखाई देता है।

रॉस के अनुसार – "यथार्थवाद इस बात पर बल देता है कि जो कुछ हम प्रत्यक्ष में अनुभव करते हैं उनके पीछे तथा उनसे मिलता –जुलता वस्तुओं का एक जगत है।

यथार्थवाद एवं आदर्शवाद में भेद –

- (1) जगत और वस्तु की व्याख्या – यथार्थवादियों का विश्वास है कि जो हमें जगत और जगत की वस्तुएं दिखाई देती हैं उन्हीं को सत्य मानते हैं आदर्शवादी जगत से परे की सत्ता में विश्वास करते हैं और जगत और विश्व को नश्वर मानते हैं।
- (2) तत्वमीमांसा की व्याख्या – आदर्शवादी प्रकृति और मनुष्य में सामन्जस्य मानते हैं। और जगत में मनुष्य को प्रधानता देते हैं। जबकि यथार्थवादी प्रकृति और मनुष्य में सामन्जस्य को महत्व नहीं देते और न ही मनुष्य को जगत में प्रमुख स्थान देते हैं।
- (3) ज्ञानमीमांसा की व्याख्या – यथार्थवादी ज्ञान को अनुभवजन्य ही मानते हैं जो हम ज्ञानेन्द्रियों से जगत की वस्तु देखते हैं और इनके सम्बन्ध में जो हमें जानकारी प्राप्त होती है उसे ही ज्ञान माना जाता है अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान में इनका विश्वास है जबकि आदर्शवादी अपनी अन्तर्दृष्टि तथा अन्तः प्रज्ञा का ज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्व देते हैं। ज्ञान दृष्टि से ये ज्ञाता और ज्ञेय को भी विशेष महत्व देते हैं। जगत की वस्तुओं को अधिक महत्व देते हैं। जगत की वस्तुओं को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है।

प्रश्न : 39 यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा के स्वरूप का वर्णन कीजिए ।
Describe the mode of education according to realism.

उत्तर शिक्षा का अर्थ – यथार्थवादी शिक्षा को विकास की प्रक्रिया मानते हैं। यह ज्ञान को ज्ञान के लिए नहीं तथा न ही ज्ञान को मुक्ति के साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि ज्ञान का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो उनके लिए आवश्यक तथा उपयोगी हो तथा

जीवन को सुखी बना सके। यथार्थवादियों के अनुसार शिक्षा का जीवन में उपयोग करना भी आवश्यक है यदि शिक्षा जीवन के लिए उपयोगी नहीं है तो उसे मानसिक अभ्यास ही मानना चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य—यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जीवन को सुखमय बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कुछ विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्यों का प्रतिपादन किया गया है वे उद्देश्य इस प्रकार हैं :-

1. शारीरिक विकास करना।
2. इन्द्रियों का प्रशिक्षण करना।
3. मानसिक योग्यताओं का विकास करना।
4. प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण की जानकारी देना।
5. वैज्ञानिक अभिवृत्ति व दृष्टिकोण का विकास करना।
6. व्यावसायिक क्षमताओं का विकास करना।
7. नैतिक मूल्यों का विकास करना।

शिक्षण प्रक्रिया — यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया में मानव विकास को महत्व दिया जाता है। शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाए जो बालकों के लिए व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूप से उपयोगी हो जिसके द्वारा मानव संस्कृति का विकास किया जा सके। विद्यालय को समाज के लघु रूप में कार्य करना चाहिए। विद्यालयों को प्रबन्धन हेतु स्वतन्त्रता भी होनी चाहिए जिससे विद्यालय स्थानीय आवश्यकताओं को भी ध्यान में रख सके। शिक्षा की प्रक्रिया में मानवीय तत्वों को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए। शिक्षा का पाठ्यक्रम — यथार्थवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए शिक्षा के उद्देश्य दिशा प्रदान करते हैं। सुखमय जीवन की तैयारी के लिए बालक को उसके जीवन के लिए तैयार करना होता है इसलिए पाठ्यक्रम का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसका बालक के जीवन से सीधा सम्बन्ध हो तथा उसके लिए व्यक्तिगत उपयोगिता भी हो इसलिए यथार्थवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में सभी विषयों को स्थान देते हैं।

यथार्थवादी पाठ्यक्रम का उद्देश्य आदतों तथा अभिवृत्तियों का विकास करना है। यथार्थवादी बालकों को अपनी रुचियों, योग्यताओं तथा आवश्यकतानुसार विषयों को चयन की स्वतन्त्रता देता है परन्तु यह मातृभाषा, किसी व्यवसाय अथवा किसी विषय की शिक्षा को अनिवार्य बनाने के पक्ष में नहीं है। पाठ्यक्रम में आत्मविज्ञान तथा मनोविज्ञान विषय को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए तथा इसके साथ-साथ इसमें कला, कविता, साहित्य, जीवनियां, दर्शन तथा धर्म का भी समावेश किया जाना चाहिए।

शिक्षण विधियां — यथार्थवादी शिक्षण में ऐसी विधियों को प्राथमिकता देते हैं जिससे उन्हें यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके इसके लिए यथार्थवादियों ने भ्रमण, देशाटन तथा शैक्षिक यात्राओं को महत्वपूर्ण बताया है ऐसी शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए जिससे वैज्ञानिक तथ्यों का स्पष्ट, सरल तथा व्यवस्थित ज्ञान दिया जा सके। शिक्षक को अपने व्यक्तिगत विचारों को शिक्षण से अलग रखना चाहिए। अपितु बालकों को रुचि और आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण विधियों का चयन किया जाना चाहिए। शिक्षक को अपने शिक्षण की अपेक्षा छात्रों को सीखने में सहायता प्रदान करनी चाहिए। यथार्थवाद के अनुसार शिक्षण विधियों की सूची यहां प्रस्तुत की गई है —

1. यथार्थवाद ऐसी शिक्षण विधियों को अधिक महत्व देते हैं जिनसे शुद्ध ज्ञान दिया जा सके।
2. इनमें शैक्षिक यात्राएं तथा देशाटन प्रमुख विधि हैं जिससे शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है।
3. इसमें बहु-इन्द्रिय आयाम का उपयोग करते हैं।
4. यथार्थवाद में निरीक्षण, सर्वेक्षण, प्रयोग विधियों को भी विशेष महत्व दिया जाता है।

शिक्षक की भूमिका :- यथार्थवाद के अनुसार शिक्षक की भूमिकाओं का उल्लेख निम्नांकित पंक्तियों में किया गया है –

1. शिक्षक छात्रों की क्षमताओं तथा योग्यताओं का ध्यान रखता है
2. शिक्षक को शिक्षण के साथ निर्देशन भी देना होता है।
3. शिक्षक को जीवन की वास्तविकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।
4. शिक्षक में छात्रों के समस्या समाधान की क्षमताएं होनी चाहिए।
5. शिक्षक में विषय के प्रति आत्म-विश्वास होना चाहिए।
6. शिक्षक को छात्रों में नैतिक मूल्यों का विकास करना चाहिए।
7. शिक्षक द्वारा छात्र को परिश्रमी होने का प्रोत्साहन देना चाहिए।
8. यथार्थवाद के अनुसार 'करके सीखना' अधिक प्रभावशाली होता है। जिसके लिए छात्रों को अधिक क्रियाशील रखा जाए।
9. शिक्षा के मूल्यों का निर्धारण शिक्षक को करना चाहिए।

यथार्थवादी शिक्षा की समीक्षा – यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिक होना चाहिए। अब सभी यह मानने लगे हैं कि शिक्षा का स्वरूप कुछ भी हो परन्तु उसका जीवन में उपयोग अवश्य होना चाहिए। ये अव्यावहारिक शिक्षा को महत्व नहीं देते हैं। यथार्थवादी शिक्षण प्रक्रिया पाठ्यक्रम तथा उद्देश्य के निर्धारण में वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हैं। यथार्थवादी ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण पर अधिक बल देते हैं। और ये ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान का मुख्य स्तोत्र एवं साधन मानते हैं।

विशेषताएं –

1. शिक्षा की व्यावहारिक प्रवृत्ति पर अधिक बल दिया जाता है।
2. शिक्षा के उद्देश्यों में व्यक्तिगत विकास, जीविकोपार्जन की क्षमताओं को महत्व दिया जाता है।
3. शिक्षा की प्रक्रिया में वैज्ञानिक और तकनीकी विषय को विशेष महत्व दिया जाता है।
4. यथार्थवादियों के अनुसार शिक्षण में वैज्ञानिक विधियों को प्राथमिकता दी जाती है।
5. शिक्षा की प्रक्रिया में ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण पर विशेष स्थान दिया जाता है।
6. यथार्थवादियों के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान को ही शुद्ध माना जाता है।
7. इन्द्रिय अनुभव को ज्ञान का स्रोत तथा साधन मानते हैं।
8. विद्यालय को समाज का लघुरूप मानते हैं। और अनुशासन में आत्मनियंत्रण को विशेष स्थान देते हैं।

यथार्थवादी शिक्षा दर्शन के मुख्य दोष :-

1. सभी शिक्षण विधियों में वस्तुनिष्ठता तथा यथार्थता का गुण सम्भव नहीं है।
2. यथार्थवादी शिक्षण की प्रक्रिया में मूल्यों को विशेष महत्व नहीं दिया गया है। जो कि सभी समाजों और व्यक्तियों के लिए अधिक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक है।
3. यथार्थवादी शिक्षा में भावात्मक पक्ष और क्रियात्मक पक्ष पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है।
4. शिक्षा की प्रक्रिया में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास को ही यथार्थ ज्ञान माना गया है। जब कि कला, साहित्य, सामाजिक विषयों को विशेष महत्व नहीं दिया गया है।
5. धार्मिक एवं नैतिक आचरण को भी कोई स्थान नहीं दिया गया है।

प्रश्न : 40 प्रयोजनवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी तत्व मीमांसा को समझाइये ।
Give a clear meaning of pragmatism. Explain its methodology

उत्तर अंग्रेजी का 'प्रेग्मैटिज्म' शब्द ग्रीक शब्द प्रैग्मैटिकोज से निकला है। जिसका अर्थ है 'व्यावहारिक' अथवा 'व्यवहार्य' प्रैग्मैटिज्म की विचारधारा का आशय यह है कि यदि किसी मूल्य विचार कार्य अथवा सिद्धान्त की कोई व्यवहारिकता अथवा उपयोगिता है तो वह उत्तम है अन्यथा नहीं ।

विलियम जेम्स ने स्वयं यह स्वीकार किया कि यह प्रयोजनवाद एक दर्शन की अपेक्षा उपाय अधिक है क्योंकि इसमें किसी अन्तिम सत्य को नहीं माना जाता है बल्कि यह माना जाता है कि अन्तिम सत्य बन रहा है।

रॉस ने अपने शब्दों में इसी तथ्य को प्रकट किया है – "प्रयोजनवाद निश्चित रूप से एक मानवतावादी दर्शन है। जो यह मानता है कि मनुष्य क्रिया में भाग लेकर अपने मूल्यों का निर्माण करता है, और यह मानता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है।

प्रयोजनवाद की तत्वमीमांसा

प्रयोजनवादी किसी भी अन्तिम सत्य में विश्वास नहीं रखते । वे जगत की रचना की अपेक्षा मनुष्य जीवन के वास्तविक पक्ष पर अधिक विचार करते हैं। जगत के बारे में उनका केवल इतना कहना है किय यह जगत अनेक वस्तुओं और क्रियाओं से बना है इनकी वह इससे अधिक व्याख्या नहीं करता। प्रयोजनवादी आत्मा को मन का ही दूसरा रूप मानते हैं। मन एक पदार्थजन्य चेतन तत्व है। विलियम जेम्स –संसार की उन्हीं वस्तुओं एवं क्रियाओं को सत्य मानने में विश्वास रखता है जो मानव जीवन के लिए उपयोगी है।

प्रयोजनवादी तत्वमीमांसा का बोध निम्न रूप से होता है :-

1. समस्त जगत अग्रभूमि है।
2. जगत का लक्षण सर्वत्र प्रक्रिया और परिवर्तनशील है।
3. जगत अनिश्चित है।
4. जगत अपूर्ण और अनिर्धारित है।
5. जगत बहुतत्ववादी है।
6. जगत के साध्य उसकी स्वयं की प्रक्रिया के अन्तर्गत है।
7. जगत न तो अतीन्द्रिय सत् है न इसे अपने में समाये ही है।
8. मनुष्य जगत के साथ सांतत्यपूर्ण स्थिति में है।
9. मनुष्य जगत में सक्रिय कारण नहीं है।
10. जगत प्रगति का निश्चित विश्वास नहीं देता है।

प्रश्न : 41 प्रयोजनवाद पर आधारित शिक्षा की समीक्षा कीजिए।
Analyze the education based on pragmatism.

उत्तर प्रयोजनवादी सत्यों एवं मूल्यों को मनुष्य द्वारा निर्मित मानते हैं। इसलिए प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिससे वह छात्रों को सत्यों व मूल्यों को प्रेषित कर सके, निर्माण कर सके। प्रयोजनवादी सत्य को भी परिवर्तनशील मानते हैं। अतः प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा द्वारा बालकों में ऐसी क्षमताओं का विकास किया जाए, जिससे बालक अपने जीवन को उपयोगी बना सके तथा समाज में भली प्रकार समायोजन कर सके। प्रयोजनवादी शिक्षा की परम्पराओं को महत्व नहीं देते उसका मानना है कि शिक्षा

बालकों बदलते हुए परिवेश के लिए देनी चाहिए इन्होंने प्रगतिशील शिक्षा स्वरूप दिया जो जॉन डीवी के सिद्धान्तों पर आधारित है।

शिक्षा का अर्थ :-प्रयोजनवादी शिक्षा को मनुष्य के विकास की प्रक्रिया मानते हैं। शिक्षा की प्रक्रिया का सम्पादन सामाजिक वातावरण में ही किया जा सकता है। जिसके द्वारा समाज की संस्कृति का संरक्षण, प्रसार तथा विकास किया जाता है। बालकों में ऐसी क्षमताओं का विकास किया जाए जिसे वह अपने सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण में समायोजन कर सके। प्रयोजनवादी शिक्षा की प्रक्रिया में सामाजिक सक्षमताओं के विकास को महत्व देते हैं। जॉन डीवी ने प्रयोजनवादी शिक्षा की प्रक्रिया इस प्रकार से दी है "शिक्षा व्यक्ति की उन सभी योग्यताओं का विकास करती है जो उनमें अपने वातावरण पर नियन्त्रण रखने तथा अपनी सम्भावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करें।

शिक्षा के उद्देश्य :- प्रयोजनवादी पूर्व निश्चित सत्त्यों, आदर्शों एवं मूल्यों में विश्वास नहीं करते क्यों कि मनुष्य का प्राकृतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक वातावरण बदलता रहता है और यह बदला हुआ वातावरण मनुष्य को नये-नये अनुभव प्रदान करता है जिससे नये-नये सत्त्यों, आदर्शों तथा मूल्यों का निर्माण होता रहता है इसलिए शिक्षा के उद्देश्यों को निश्चित नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में जॉन डीवी ने उल्लेख किया है कि " शिक्षा के अपने कोई उद्देश्य नहीं होते, उद्देश्य तो व्यक्तियों के होते हैं और व्यक्तियों के उद्देश्यों में बड़ी भिन्नता होती है और जैसे जैसे व्यक्तियों का विकास होता है उनके उद्देश्य बदलते रहते हैं"।

प्रयोजनवादी शिक्षा के उद्देश्य :-

1. सामाजिक सक्षमता का विकास करना
2. समस्या -समाधान की योग्यताओं का विकास करना।
3. नेतृत्व के गुणों का विकास करना।
4. व्यक्तिगत गुणों का विकास करना।
5. कार्य-कौशलों का विकास करना।

शिक्षण प्रक्रिया - प्रयोजनवादी शिक्षण प्रक्रिया में 'करके सीखने' को प्राथमिकता देते हैं। शिक्षा में निर्देशन का अधिक उपयोग किया जाता है। प्रयोजनवादी दर्शन शिक्षा की प्रक्रिया योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे छात्र सत्त्यों व मूल्यों का निर्माण कर सके।

शिक्षा का पाठ्यक्रम - प्रयोजनवाद के अनुसार पाठ्यक्रम का स्वरूप अनुभव केन्द्रित तथा क्रिया-केन्द्रित होता है, प्रयोजनवादियों ने पाठ्यक्रम के विकास हेतु कुछ अधिनियमों को दिया है ये अधिनियम इस प्रकार हैं -

1. उपयोगिता का अधिनियम - जीवनोपयोगी ज्ञान का समावेश हो
2. अभिरुचि का अधिनियम - बालकों की स्वाभाविक रुचियों को शामिल
3. क्रिया का अधिनियम - खेलकूद, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्रियाएं
4. अनुभव का अधिनियम- आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, भौतिक विज्ञान की परिस्थितियां
5. एकीकरण का अधिनियम - सभी विषयों को एकीकृत करके पढ़ाया जाये।

शिक्षण विधियां -

1. क्रिया - केन्द्रित तथा अनुभव केन्द्रित विधियों का उपयोग अधिक है।
2. योजना विधि इसकी प्रमुख देन है।
3. प्रकल्प कार्यो को भी महत्व दिया जाता है। आज इसका ही अधिक उपयोग किया जाता है।

4. समस्या –समाधान से विषयों का ज्ञान देते है।
शिक्षक की भूमिका
1. शिक्षक की भूमिका एक निर्देशक एवं सलाहकार की होती है।
2. छात्र 'करके अधिक सीखने' की क्रिया को अपनाते है।
3. शिक्षक छात्रों को सृजनात्मक प्रकल्पों को देता है।
4. छात्रों की सामूहिक क्रियाओं को बढ़ावा दिया जाता है।
5. शिक्षा के मूल्यों को शिक्षक अपने अनुभव के आधार पर सुनिश्चित करता है।
6. शिक्षक छात्रों को नेतृत्व के गुणों के विकास के लिए भी अवसर देता है।

प्रयोजनवादी शिक्षा की समीक्षा

1. प्रयोजनवादी दर्शन की कोई तत्वमीमांसा नहीं है यह किसी अन्तिम सत्य में विश्वास नहीं करते इनकी शिक्षा के कोई आदर्श एवं मूल्य नहीं है। उद्देश्य व पाठ्यक्रम भी निश्चित नहीं है। ऐसी स्थिति में शिक्षा की प्रक्रिया का रूप विकसित करना असम्भव सा प्रतीत होता है।
2. शिक्षा के उद्देश्यों में बालक के सम्पूर्ण विकास को महत्व दिया है परन्तु सम्पूर्ण विकास से क्या तात्पर्य है इसका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया है।
3. प्रयोजनवादियों ने शिक्षा को अनुभव केन्द्रित माना है जबकि उनकी शिक्षण विधि समस्या केन्द्रित है। मानव को सभी ज्ञान अनुभवों से नहीं दिया जा सकता।
4. आधुनिक समय में मानवीय ज्ञान के क्षेत्र में विविध प्रकार के नये-नये विषयों का विकास हो रहा है उन सभी को ज्ञान को एकीकरण आयाम से देना सम्भव नहीं है।
5. जॉन डीवी तथा किलपैट्रिक भी शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में एक दूसरे से सहमत नहीं है।
6. प्रयोजनवाद के अपने आदर्श एवं मूल्य नहीं है।
7. प्रयोजनवाद शिक्षा द्वारा सभी को सुखी एवं समृद्धशाली बनाना चाहता है इसके परिणामस्वरूप आज संसार के सभी देशों के व्यावसायिक शिक्षा को प्राथमिकता दी जा रही है तथा शिक्षा द्वारा धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसलिए आज समाज में अराजकता अधिक दिखाई देती है।
8. प्रयोजनवादियों की मुख्य देन योजना विधि है। इस योजना विधि के द्वारा सभी विषयों की शिक्षा नहीं दी जा सकती है क्यों कि विभिन्न विषयों के विकास में एक तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक क्रम होता है, इस विधि के अन्तर्गत इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है।

प्रश्न : 42 मानवाद के अनुसार शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य बताइए तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा का पाठ्यक्रम कैसा हो ? स्पष्ट किजिए ।

Describe the main objectives of education according to Humanism. What can be the syllabus of education for attaining the objectives.

उत्तर

मानवतावादियों के अनुसार मनुष्य एवं समाज के जीवन में शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा आदर्श समाज की स्थापना का साधन है। शिक्षा एक सृजनात्मक प्रक्रिया है। शिक्षा पर मानवीय प्रेम की भावना उत्पन्न करने का दायित्व है। और शिक्षा के द्वारा ही विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास किया जा सकता है। अतः शिक्षा के लक्ष्य मानव की आवश्यकताओं और रुचियों के अनुरूप होने चाहिए । शिक्षा को बालक के व्यक्तित्व का विकास करना चाहिए। जीविकोपार्जन की क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए। उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन व्यतीत करने की योग्यता विकसित करनी चाहिए और मानवीय समस्याओं को

समझकर उन्हें निरन्तर हल करने की दक्षता पैदा करनी चाहिए। इस प्रकार मानववादी शिक्षा मानव केन्द्रित है।

शिक्षा का अर्थ :- मानववादियों के अनुसार शिक्षा एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है जो मनुष्य को वर्तमान के साथ उसमें भविष्य को भी सुन्दर और प्रगतिशील बनाती है।

शिक्षा के उद्देश्य:-

1. सम्पूर्ण योग्यताओं और क्षमताओं का विकास
2. उच्चतम मानवीय मूल्यों का विकास
3. मानवीय समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता का विकास
4. स्वतन्त्र, विवेकपूर्ण और सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास
5. आत्मबोध को जागृत करना।
6. मानसिक विकास पर बल।

शिक्षा का पाठ्यक्रम :- मानववाद के अनुसार पाठ्यक्रम छात्र के आन्तरिक जीवन तथा उसके वैयक्तिक विकास के निर्धारित गुणों को उभारने में सक्षम होना चाहिए साथ ही मानवीय विकास की अवस्थाओं को ध्यान में रखने पर बल देता है। पाठ्यक्रम में मानवीय आदर्श तथा सांस्कृतिक विरासत को स्थान मिलना चाहिए।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम में मानविकी विषय, साहित्य, आधुनिक भाषाएं तथा संगीत, ललित कलाएं आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

इसके पश्चात् पाठ्यक्रम में प्राकृतिक विज्ञानों को स्थान मिलना चाहिए। समग्र मानव के विकास के लिए पाठ्यक्रम में उक्त के अतिरिक्त सामाजिक विषयों, शारीरिक एवं स्वास्थ्य विज्ञान तथा व्यावहारिक विषयों को स्थान प्रदान करने पर बल दिया जाता है। मानववाद, धर्म निरपेक्षता का हिमायती होने के कारण पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा को स्थान प्रदान नहीं करता है।

शिक्षण विधियां- मानवतावादियों ने बालक की स्वतन्त्रता पर विशेष बल दिया है इसलिए वे ऐसी शिक्षण विधियों को अपनाने पर बल देते हैं जो बालक की स्वतन्त्रता में बाधा उत्पन्न नहीं करती। मानवतावादियों ने शिक्षण विधि के तीन आधार बताये हैं।

बालक की योग्यताएं एवं आवश्यकताएं – शिक्षण विधि का पहला आधार बालक की आवश्यकताएं, विकास की अवस्थाएं, योग्यताएं, क्षमताएं, रुचियां, आकांक्षाएं और अभिवृत्तियां होनी चाहिए।

वैज्ञानिक प्रक्रिया – मानववादी शिक्षण विधि का दूसरा आधार वैज्ञानिक विधि को मानते हैं। इनका मानना है कि इस विधि के प्रयोग से बालकों में तर्कपूर्ण चिन्तन और वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास किया जा सकता है।

मानववादी प्रक्रिया- मानवतावादियों के अनुसार शिक्षण विधि का तीसरा आधार मानवीय अनुभवों का प्रयोग है। मानवतावादियों के अनुसार शिक्षक के अनुसार शिक्षक द्वारा जो भी शिक्षण विधि प्रयुक्त की जाये, उसमें मानवीय संस्पर्श अवश्य होना चाहिए। विषय वस्तु को मानवीय अनुभवों से समन्वित करके पढ़ाया जाना चाहिए।

शिक्षक – मानववाद के अनुसार शिक्षक के निम्नलिखित गुण एवं कार्य होने चाहिए –

1. शिक्षकों का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और व्यापक होना चाहिए।
2. शिक्षक को मानवीय गुणों से युक्त होना चाहिए।
3. शिक्षक को बालकों पर अपना मत आरोपित नहीं करना चाहिए।
4. शिक्षक को वैज्ञानिक विधि का समुचित ज्ञान होना चाहिए।
5. शिक्षक को परिवर्तन और पुनर्चना में विश्वास रखना चाहिए।
6. शिक्षक को बालक के आध्यात्मिक विकास के लक्ष्य को महत्व देना चाहिए।

छात्र :- मानववादी बालक के व्यक्तित्व का आदर करते हैं। वे उन्हें शिक्षकों का अन्धा भक्त बनाने के पक्ष में नहीं हैं। वे उन्हें स्वतन्त्र रूप से सोचने एवं निर्णय लेने की स्वतन्त्रता देने के पक्ष में हैं। शिक्षक शिक्षार्थी के सम्बन्ध के विषय में मानववादी शिक्षक और छात्र के बीच शासक एवं शासित के सम्बन्ध में घोर विरोधी हैं वे इनके बीच मानवीय सम्बन्ध के पक्ष में हैं जो प्रेम व सहयोग पर आधारित होता है ये शिक्षकों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे अपने छात्र को किसी भी प्रकार के भय, द्वन्द और तनाव से मुक्त रखे इनकी दृष्टि से उसी स्थिति में छात्रों में मानवीय गुणों का विकास किया जा सकता है।

प्रश्न : 43 अस्तित्ववाद पर आधारित शिक्षा के प्रारूप को समझाइये तथा 'व्यक्ति की आन्तरिकता ही सत्य है' कथन की पुष्टि कीजिए।

Describe or explain the mode of education according to existentialism and emphasize to fact that inner qualities of person all a real truth.

उत्तर

शिक्षा में अस्तित्ववाद ने विशेष रुचि नहीं दिखाई, इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि यह दर्शन अभी विकास की अवस्था में ही है। इसने अस्तित्ववाद के निहितार्थों पर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विचार पूरा नहीं किया। अतः शिक्षा पर अभी इनका कोई ध्यान नहीं गया। फिर भी अस्तित्ववाद के प्रमुख सिद्धान्तों के सन्दर्भ में शिक्षा पर यहां कुछ विचार किये गये हैं।

शिक्षा का अर्थ – शिक्षा वह साधन है जो मनुष्य को वह बनने में सहायता करती है जो वह बनना चाहता है ये परिवार की सीखने की सर्वोत्तम संस्था मानते हैं। ये शिक्षा को उसमें व्यापक रूप में स्वीकार करते हैं।

शिक्षा के उद्देश्य – अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य आन्तरिक सत्य का साक्षात्कार है। समकालीन यान्त्रिक और औद्योगिक जीवन ने आधुनिक मानव को चिन्ताओं, भय, अपराधी चेतनाओं और हताशाओं से भर दिया है वह भीड़ में भी अकेला रहता है। उसकी वैयक्तिकता भ्रष्ट हो गयी है। शिक्षा को उसे उसकी आत्मगत चेतना का ज्ञान देना चाहिए। शिक्षा का अस्तित्ववादी लक्ष्य मानवतावादी है उसका लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है वह आत्म अस्तित्व का ज्ञान प्रदान करता है। अस्तित्ववादियों का लक्ष्य शिक्षा के द्वारा बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास है। शिक्षा का सरोकार सम्पूर्ण मनुष्य से है उसका लक्ष्य चरित्र निर्माण और आत्मसाक्षात्कार है।

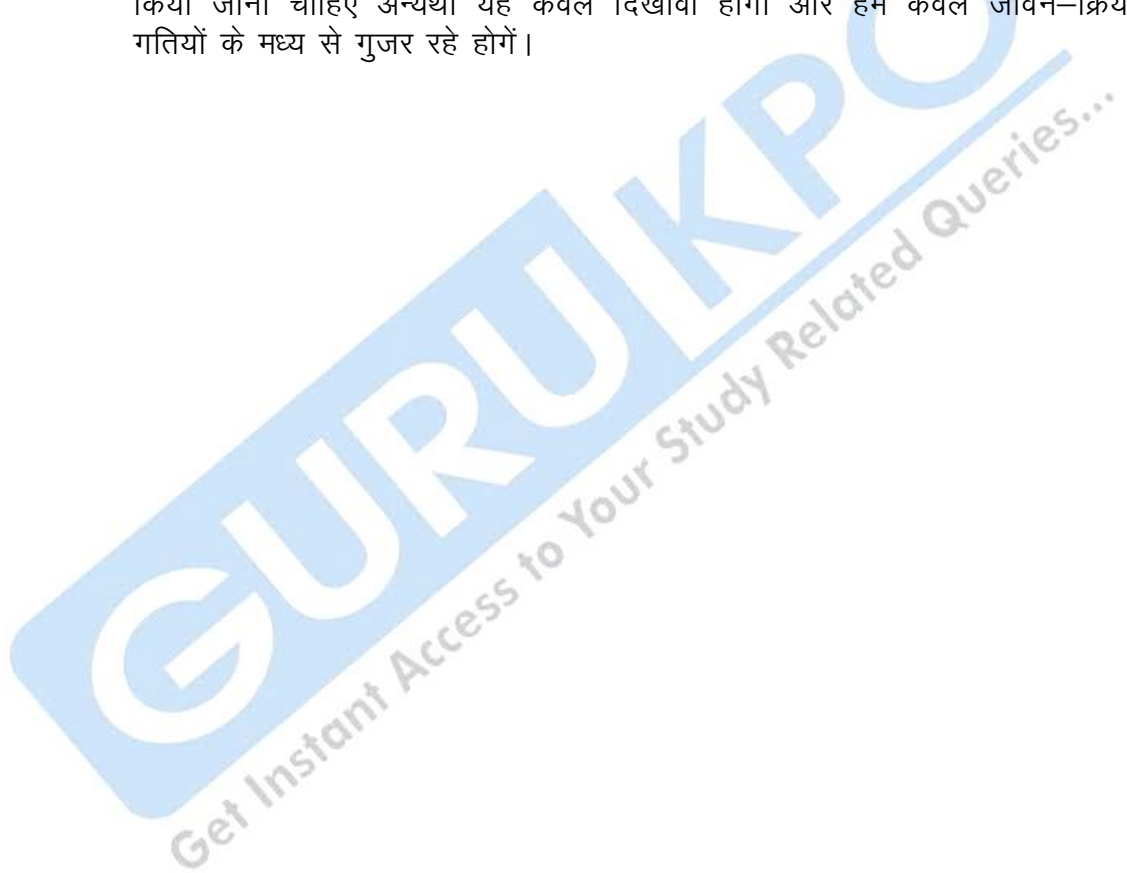
शिक्षा का पाठ्यक्रम – अस्तित्ववादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में विज्ञान के अलावा मानविकी अध्ययन, नीतिशास्त्र और धर्म को भी स्थान मिलना चाहिए। इस विचारधारा से प्रभावित होकर आजकल इन्जीनियरिंग कॉलेजों में पाठ्यक्रम में दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान और सामाजिक अध्ययन पढ़ाये जा रहे हैं।

अध्यापक – अस्तित्ववादियों के अनुसार अध्यापक एक ऐसी शैक्षिक परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें विद्यार्थी अपने से सम्पर्क कर सकता है। और अपने प्रति चेतन होकर आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर सकता है। इसके लिए शिक्षक को स्वयं अस्तित्ववादी दृष्टिकोण रखना चाहिए। उसे स्वयं आत्म-साक्षात्कार का अनुभव होना चाहिए ताकि वह इस प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सहायता कर सके।

विद्यार्थी – अस्तित्ववादी शिक्षार्थी को उसमें चयन की स्वतन्त्रता देना चाहते हैं कि वह क्या बनना चाहता है और वह यह कैसे बनना चाहता है और यह कार्य कोई शिक्षार्थी तभी कर सकता है जब उसे अपनी क्षमता का ज्ञान हो वह सही चयन करने में निपुण हो और उसकी प्राप्ति के लिए सही कार्य करने में सक्षम हो ये शिक्षार्थियों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे किसी भी समस्या का साहस के साथ सामना करे, कभी उदास न हो और कभी हिम्मत ना हारे।

विद्यार्थी-अध्यापक सम्बन्ध :- अस्तित्ववाद अध्यापक और विद्यार्थी में निजी सम्बन्ध पर बल देता है। इनमें 'मैं-तुम' का सम्बन्ध हो न कि 'यह -वह'। दोनों के मध्य सीधा, व्यक्तिगत, निजी सम्बन्ध विद्यमान होना अस्तित्व का द्योतक है। इस सम्बन्ध में अन्तःक्रिया अधिक स्वाभाविक होती है। अध्यापक सदैव इस बात का ध्यान रखता है कि सामने बैठा हुआ विद्यार्थी मात्र संख्या या अनुक्रमांक न होकर वास्तविक सत्ता है।

व्यक्तिवादी शिक्षा- व्यक्तिवाद पर अस्तित्ववाद का आग्रह है शिक्षा के सम्बन्ध में इन निष्कर्षों को निर्गमित करने से पूर्व व्यक्तिवाद पर विचार किया है। अस्तित्वाद व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का समर्थक है वह व्यक्ति के रूप में व्यक्ति को प्राथमिकता देता है। अस्तित्ववादी किसी भी प्रकार की 'सामुहिकता' या सक्रियता को, जो व्यक्ति की इन तत्वों से रक्षा कर लेगा, सन्देह की दृष्टि से देखता है वह उनको वैसे जीवन के सार तत्वों के रूप में समझता है। जैसा वास्तव में किया जाता है और मानता है कि इनसे बचा नहीं जा सकता है। जीवन का सामना अवश्य ही इससे गहनतम और सम्भवतः सम्पूर्ण स्तरों पर किया जाना चाहिए अन्यथा यह केवल दिखावा होगा और हम केवल जीवन-क्रिया की गतियों के मध्य से गुजर रहे होंगे।



Section B

Sociological Foundation in Education

प्रश्न 1 भारतीय समाज का प्राचीन स्वरूप है

- अ.) सामूहिक जीवन ब.) जाति प्रथा
स.) धार्मिक समूह द.) उपरोक्त सभी

(द)

प्रश्न 2 "विद्यालय समाज का लघु रूप है" कथन है।

- अ.) दुर्खीम का ब.) जॉनसन का
स.) ओटावे का द.) जॉन डीवी का

(द)

प्रश्न 3 समाजशास्त्र के प्रवर्तक है।

- अ.) जॉन डीवी ब.) विलियम जेम्स
स.) अगस्त काम्टे द.) जॉर्ज पेनी

(स)

प्रश्न 4 सामाजिक संरचना की विशेषता है—

- अ.) एकता ब.) परिवर्तनशीलता
स.) क्रमबद्धता द.) उपरोक्त सभी

(द)

प्रश्न 5 सामाजिक स्तरीकरण की प्रमुख विचारधारा है —

- अ.) प्रकार्यवादी ब.) संघर्षवादी
स.) संकलनवादी द.) उपरोक्त सभी

(द)

प्रश्न 6 संघर्षवादी विचारधारा के प्रवर्तक है —

- अ.) मूरे ब.) किंग्सले डेविस एवं लिबर्ट मोर
स.) कार्ल मार्क्स द.) सोरोकिन

(स)

प्रश्न 7 "सामाजिक स्थिति में कोई भी परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता है" कथन है—

- अ.) यंग एवं मेक का ब.) सी.वी गुड का
स.) बो गार्डस का द.) मिलर का

(स)

प्रश्न 8 सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले घटक है —

- अ.) सामाजिक संरचना ब.) जाति प्रथा

- स.) शिक्षा द.) उपरोक्त सभी (द)
- प्रश्न 9 संस्कृतिकरण में वृद्धि करता है—
 अ.) आधुनिकीकरण ब.) पश्चिमीकरण
 स.) नगरीकरण द.) औद्योगिकीकरण (स)
- प्रश्न 10 समाजीकरण के मुख्य अभिकरण है —
 अ.) परिवार ब.) क्रीड़ा समूह
 स.) विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ द.) उपरोक्त सभी (द)
- प्रश्न 11 बालक के समाजीकरण का सबसे सशक्त अभिकरण है—
 अ.) परिवार ब.) विद्यालय
 स.) पास-पड़ोस द.) क्रीड़ा समूह (ब)
- प्रश्न 12 विद्यालय शिक्षा का कैसा साधन है ?
 अ.) औपचारिक ब.) अनौपचारिक
 स.) निरौपचारिक द.) उपरोक्त कोई नहीं (अ)
- प्रश्न 13 धर्म का अर्थ होता है —
 अ.) आचरण ब.) धारण करना
 स.) सत्य का मार्ग द.) उपरोक्त सभी (द)
- प्रश्न 14 सर्वोच्च संस्कृति का सम्बन्ध होता है —
 अ.) सत्य ब.) सुन्दरता से
 स.) शिवम् द.) उपरोक्त सभी से (द)
- प्रश्न 15 “ जनतंत्र वह सरकार है, जिसमें सब भाग लेते हैं” कथन है—
 अ.) अरस्तु का ब.) सीले का
 स.) लिंकन का द.) मेजिनी का (ब)
- प्रश्न 16 राष्ट्रीय एकता समिति का गठन हुआ था —
 अ.) 1967 को ब.) 1977 को
 स.) 1987 को द.) 1997 को (अ)
- प्रश्न 17 भावात्मक एकता समिति के अध्यक्ष थे —
 अ.) जाकिर हुसैन ब.) जवाहरलाल नेहरू
 स.) मुदालियर द.) डॉ० सम्पूर्णानन्द (द)
- प्रश्न 18 शिक्षा को संविधान की समवर्ती सूची में कब रखा गया ? —
 अ.) 1949 में ब.) 1950 में

- स.) 1971 में द.) 1976 में (द)
- प्रश्न 19 वंचित वर्ग है –
- अ.) आर्थिक दृष्टि से ब.) सामाजिक दृष्टि से
- स.) सांस्कृतिक दृष्टि से द.) उपरोक्त सभी (द)
- प्रश्न 20 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक राष्ट्रों की समस्या व शिक्षा में योगदान करते हैं।
- अ.) संयुक्त राष्ट्र संघ ब.) युनेस्को
- स.) मानवाधिकार आयोग द.) उपरोक्त सभी (द)

प्रश्न 21 सामाजिक उप-व्यवस्था के रूप में शिक्षाशास्त्र की भूमिका की विवेचना कीजिए।
Describe the role of education as a form of social sub system.

अथवा

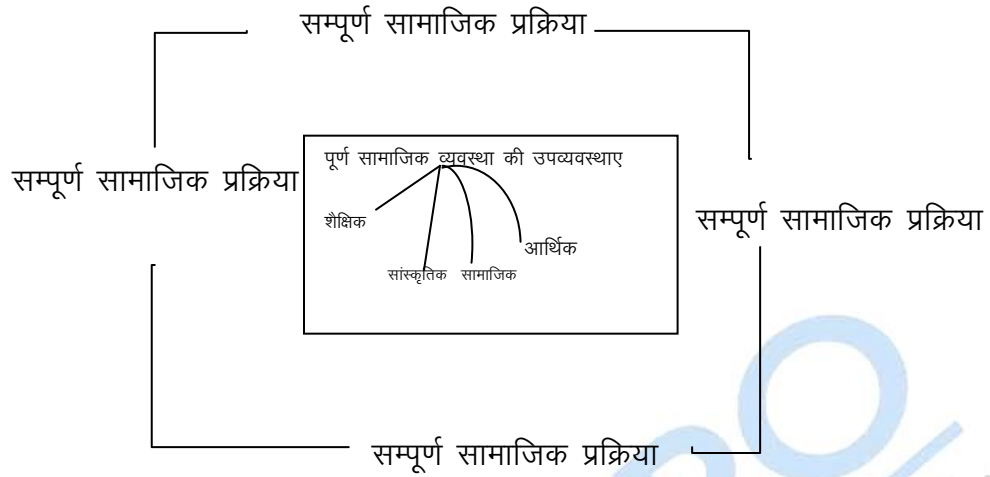
शिक्षा एक सामाजिक उप-व्यवस्था है। स्पष्ट कीजिए।

Describe the role of education as a social sub system.

उत्तर

दुर्खीम "शिक्षा अपने स्वभाव से एक सामाजिक प्रक्रिया है इसकी उत्पत्ति इसकी क्रियाएं तथा इसका परिणाम सब कुछ सामाजिक सन्दर्भों में ही होती है। यही कारण है कि इसका सम्बन्ध किसी भी अन्य विज्ञान की अपेक्षा समाजशास्त्र से अधिक है"।

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है अतः यह सामाजिक व्यवस्था का ही एक अंग है तथा इसे सामाजिक उपव्यवस्था कहा गया है समाज के सदस्यों का अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अन्य के सम्पर्क में आना तथा अन्तः क्रिया करना एक सामाजिक परिणाम के लिए सम्पन्न किया जाता है। व्यक्ति की यह सामाजिक भूमिका होती है तथा इस प्रकार की विभिन्न भूमिकाओं का व्यक्ति जीवन पर्यन्त निर्वहन करता है यह इस उद्देश्य पर निर्भर करता है कि किस समय वह किस उपव्यवस्था का सक्रिय सदस्य है। तथा किस में निष्क्रिय है समय, लक्ष्य एवं आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति एक उपव्यवस्था से दूसरी में स्वयं को सक्रिय रूप में परिवर्तित कर लेता है। ब्रुमैक " जब किसी संगठन में भली-भांति व्यवस्थित पद वाला कोई व्यक्ति अपने पदों की दृष्टि से अन्यो के साथ अन्तःक्रिया करता है तब वे एक सामाजिक व्यवस्था बनाते हैं"।



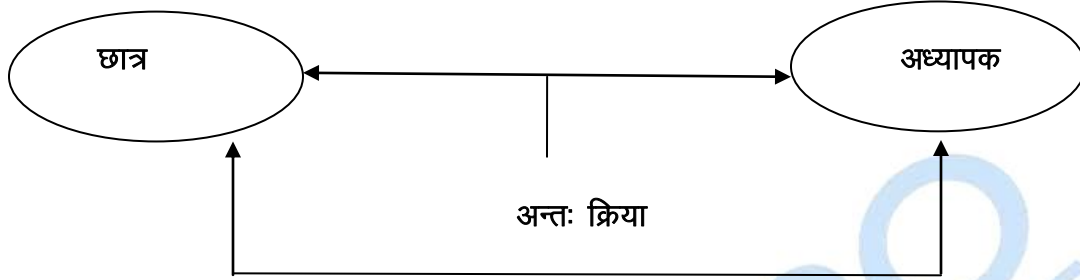
उपव्यवस्था की विशेषताएं :-

1. उपव्यवस्था स्वयं में पूर्ण व्यवस्था होती है। भिन्न भिन्न उपव्यवस्थाएं मिलकर एक बड़ी व्यवस्था का स्वरूप ग्रहण करती है।
2. एक विशेष प्रकार का समूह उपव्यवस्था का निर्माण करता है।
3. इन समूहों के सदस्य अन्य उपव्यवस्थाओं के सदस्य भी हो सकते हैं।
4. ये उपव्यवस्थाएं किसी लक्ष्य के लिए प्रयासरत रहती हैं।
5. इसमें ऐसे तत्व रहते हैं जो विरोध अथवा सहयोग करते हैं। तथा लक्ष्य प्राप्ति में सुविधा या बाधा उपस्थित करते हैं।
6. लक्ष्य प्राप्ति हेतु इनमें एकजुट होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।
7. ये उपव्यवस्थाएं अन्तःक्रिया करती हैं तथा पारस्परिक रूप में निर्भर भी होती हैं।
8. इनमें सदस्य संख्या अधिक होती है।
9. इनमें परिवर्तनशीलता का गुण होता है तथा एक उपव्यवस्था में परिवर्तन आने से दूसरी भी बदलती है।
10. इनकी प्रकृति अन्य उप व्यवस्थाओं पर नियन्त्रण स्थापित करने की होती है।
11. एक व्यवस्था दूसरी व्यवस्था को अपनी विशेषताएं प्रदान करने का भी प्रयास करती है।

सामाजिक उपव्यवस्था में इसकी विभिन्न इकाईया आपस में पूर्णतया जुड़ी होती हैं तथा एक की गतिविधियों का परिणाम दूसरी इकाई पर स्पष्ट दिखाई देता है।

टेलकाट पारसनस एवं नीज जे. स्मेलर ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि पूर्ण समाज उपव्यवस्थाओं में विभक्त है जो चार प्रकार के आधारभूत कार्यों हेतु बंटे हैं। आग्रहण –लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण तथा प्रतिमान स्थापना। किसी भी उपव्यवस्था को परिभाषित करे तो कह सकते हैं कि “उप व्यवस्था वृहद् सामाजिक प्रक्रिया, अन्तःक्रिया के सूचनातंत्र का स्वयं में पूर्ण एक भाग है जो पृथक रहकर भी व्यवस्था से जुड़ा रहता है”।

शिक्षा एक सामाजिक उपव्यवस्था के रूप में :- व्यक्ति समाज की मूलभूत इकाई है तथा शिक्षा के बिना व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती । शिक्षा एक प्रकार से संगीत है जिसमें दो स्पष्ट स्वर बनते रहते हैं जब वे विभिन्न तालों में राग बदलते हैं तो यह मालूम होता है कि मनुष्य की आन्तरिक शक्ति शारीरिक और मानसिक, बौद्धिक और काल्पनिक सृजन और अन्तर्बोध की शक्तियों का विकास हो रहा है। शिक्षा की समाज के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती है शिक्षा की प्रक्रिया के तीन अंग मिलाकर इसे उपव्यवस्था का स्वरूप प्रदान करते हैं।



शिक्षा को तीन प्रकार की चुनौतियों का सामना करने के लिए भूमिकाओं का निर्वाह करना होता है।

- ऐतिहासिक मूल्यों व संस्कृति का संरक्षण करना।
- समसामयिक परिस्थितियों में सामंजस्य करना
- भविष्य के अदृश्य समाज की तैयार करना।

प्रश्न 22 समाजीकरण से आप क्या समझते हैं ? समाजीकरण के विभिन्न सिद्धान्तों के अनुसार समाजीकरण की प्रक्रिया स्पष्ट कीजिए।

What do you understand by socialization, describe the procedure of socialization keeping in view the different principles of socialization?

उत्तर मनुष्य का जन्म समाज में होता है। समाज में जन्म लेने के पश्चात् वह धीरे-धीरे आस-पास के वातावरण के सम्पर्क में आता है और उससे प्रभावित होता है। प्रारम्भ में मनुष्य मात्र एक जैविक प्राणी होता है। क्यों कि आहार-निद्रा के अलावा उसे किसी और बात का ज्ञान नहीं होता और उसकी अवस्था बहुत कुछ पशुओं के समान होती है इसके अतिरिक्त जन्म के समय बालक में सभी प्रकार के सामाजिक गुणों का भी अभाव होता है। माता-पिता एवं परिवार के सम्पर्क में आकर वह उनसे सामाजिक शिष्टाचार की बातें सीखता है आगे चलकर उसके सम्पर्क का क्षेत्र ओर अधिक व्यापक हो जाता है तथा वह विभिन्न सामाजिक तरीकों से अपने कार्यों को संचालन करना सीख लेता है तथा उसका प्रत्येक व्यवहार समाज के नियमों के अनुसार होने लगता है इस प्रकार वह मात्र जैविक प्राणी से एक सामाजिक प्राणी बन जाता है। समाजशास्त्र में बच्चे के सामाजिक बनने की इसी प्रक्रिया को समाजीकरण कहा जाता है।

परिभाषा :- जॉनसन "समाजीकरण वह प्रशिक्षण है जो सीखने वालों को सामाजिक भूमिका अदा करने में समर्थ बनाता है।

बोगार्डस "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर रहकर व्यवहार करना सीखता है और इसके द्वारा सामाजिक आत्म-नियन्त्रण सामाजिक उत्तरदायित्व तथा सन्तुलित व्यक्तित्व का अनुभव प्राप्त करता है।

कोनिंग "समाजीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें एक व्यक्ति अपने समाज जिसमें वह जन्मा है का कार्यरत (या उपयोगी) सदस्य बनता है अर्थात् समाज की जनरीतियो एवं रूढियों के अनुसार व्यवहार एवं कार्य करता है।

समाजीकरण के सिद्धान्त

1. कूले का सिद्धान्त – समाजशास्त्री कूले का कथन है कि व्यक्ति का समाजीकरण दूसरे व्यक्तियों के साथ मिलकर रहने से होता है व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा अपने स्वयं के विकास के लिए दूसरों से विचार-विमर्श करता है और उसी के परिणामस्वरूप व्यक्ति के समाज में रहने की कला का विकास होने लगता है इस प्रकार कूले के अनुसार व्यक्ति का समाजीकरण समाज के अन्य व्यक्तियों में सम्पर्क में आने से होता है। समाज के अन्य व्यक्ति जिस सीमा तक व्यक्ति को प्रभावित करेंगे उसी सीमा तक उसका समाजीकरण होगा। कूले के सिद्धान्त को 'दर्पण सिद्धान्त' कहा जाता है इसके अनुसार व्यक्ति 'स्व' का विकास दूसरे व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रियाओं एवं अपने मूल्यांकन द्वारा करता है उन्होंने अपने सिद्धान्त में तीन बातों पर जोर दिया है –

- दूसरे लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं ?
- दूसरे लोगो ने मेरे बारे में जो धारणा बनाई है, उसके सन्दर्भ में मैं क्या सोचता हूँ ?
- मैं अपने बारे में सोचकर अपने को कैसा मानता हूँ ?

कूले के अनुसार व्यक्ति समाजरूपी दर्पण में यह देखने का प्रयास करता है कि अन्य लोग उसके बारे में क्या सोचते हैं उनकी इस धारणा के आधार पर वह अपने 'स्व' का विकास करता है अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति स्वयं के बारे में ज्ञान दूसरे व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं से प्राप्त करता है इस प्रकार दूसरे व्यक्ति हमारा सामाजिक दर्पण है जिनके माध्यम से हम अपने बारे में धारणा बनाते हैं।

2. फ्रॉयड का मनोविश्लेषण सिद्धान्त :-

फ्रॉयड ने अपने सिद्धान्त में मनोविश्लेषणात्मक उपागम को अपनाया। फ्रॉयड का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि मस्तिष्क गतिशील एवं टोपोग्राफिकल है। फ्रॉयड के अनुसार मानव मस्तिष्क के तीन भाग ऐसे हैं जो कि अन्तर्सम्बन्धित हैं। इदम्, अहम् व परम अहम्। इदम् (Id) इदम् को व्यक्ति का मौलिक स्वरूप माना जाता है जो कि अचेतन मन की गहराईयों में छिपा हुआ होता है इसमें इच्छाओं व प्रवृत्तियों को सम्मिलित किया जाता है इदम् किसी कानून या नियम को नहीं जानता यह सही व गलत को नहीं मानता यह केवल अपनी आवश्यकताओं व मूल प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करना जानता है यह सुख सिद्धान्त से निर्देशित होता है।

अहम् – यह स्पष्ट है कि इदम् को वर्चस्व स्थापित करने नहीं दिया जा सकता अतः अहम् एक दूसरी व्यवस्था के रूप में पुलिस के जैसे कार्य करता है। यह इदम् की अनैतिक एवं नियम विरुद्ध कार्यवाही को नियन्त्रित करता है यह व्यक्तियों के अन्दर प्रबन्धक या कार्यपालक की हैसियत से विद्यमान रहता है अहम् नियम विरुद्ध क्रियाओं को रोकने में क्रियान्वयक इकाई के रूप में कार्य करता है। इसके पास सब प्रकार की वीटो शक्ति है यह इदम् से उपजता है एवं यथार्थता के सिद्धान्त का

- अनुगमन करता है अहम् बुद्धिमत्ता पूर्वक मूल प्रवृत्तियों के बारे में निर्णय लेता है। यह सुख व सन्तुष्टि को अधिकतम व दुःख को न्यूनतम करने का प्रयास करता है। परम् अहम् – तीसरी व्यवस्था परम् अहम् हैं यह पूर्णरूपेण नैतिक है यह आदर्शात्मक व्यवस्था है जो वास्तविकता या यथार्थता की परवाह नहीं करती। इसका लक्ष्य सुख की अपेक्षा पूर्णता है। परम् अहम् निर्णय लेने वाली व्यवस्था है जिसमें सही व गलत का निर्णय लिया जाता है। जिसमें सामाजिक मानकों के सन्दर्भ में स्वीकार्यता व अस्वीकार्यता पर भी विचार किया जाता है यह व्यक्ति में अपराध बोध एवं दण्ड की व्यवस्था करती है। समाज में सब व्यक्ति सामाजिक मानकों का आन्तरिकीकरण कर लेता है। प्रारम्भिक व्यवस्था समाज की विभिन्न संस्थाएं व्यक्ति को पुरस्कृत व दण्डित करती है।
3. दुर्खीम का सिद्धान्त 'सामूहिक प्रतियोगिता'— दुर्खीम के सिद्धान्त को सामूहिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त कहा जाता है इनका कथन है कि समाज में अनेक दृष्टिकोण, मूल्य, प्रतिमान तथा व्यवहार होते हैं कि ये सामूहिक रूप से व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। दुर्खीम अपने सिद्धान्त में इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति सामूहिक प्रतिनिधित्व का अनुसरण करता है और उसी से उसका समाजीकरण होता है दूसरे शब्दों में व्यक्ति सामाजिक विचारों, दृष्टिकोणों, मूल्यों व व्यवहारों को इसलिए ग्रहण करता है कि उनके पीछे समाज की सामाजिक शक्ति होती है उसी से व्यक्ति का समाजीकरण हो जाता है।
 4. मीड का "सामाजिक विश्लेषण" सिद्धान्त—मीड ने समाजीकरण की प्रक्रिया का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है इनका कहना है कि बच्चे को जब दूसरे व्यक्तियों से संवेदनात्मक सम्पर्क स्थापित होता है तभी उसमें 'स्व' अथवा 'अहम्' का विकास होता है मीड ने 'मैं' तथा 'मुझ' के आधार पर अपने सिद्धान्त को समझाने का प्रयास किया है जब तक बच्चे में 'स्व' चेतना जाग्रत नहीं होती 'मैं' के समान व्यवहार करता है। 'स्व' चेतना जाग्रत हो जाने के पश्चात् वह 'मुझ' के समान व्यवहार करने लगता है। 'मैं' का अर्थ अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण के प्रति बच्चे का प्रत्युत्तर है जबकि 'मुझ' वह सब कुछ है जिसमें प्रति व्यक्ति स्वयं सचेत होता है मैं तथा मुझ में अपने से प्रश्नोत्तर करता रहता है इसी से उसमें 'स्व' का निर्माण होता है तथा वह दूसरों की भूमिका निभाने लगता है।

प्रश्न 23

संस्कृति के सम्प्रत्यय को बताइये। शिक्षा व संस्कृति के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।
 Explain the concept of culture? Explain the relation between education & culture ?

उत्तर

संसार की समस्त वस्तुओं को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित कर सकते हैं— एक प्राकृतिक और दूसरी मानव निर्मित एवं विकसित। व्यापक अर्थ में संस्कृति में वह सब कुछ है जो मानव निर्मित एवं विकसित है। संस्कृति शब्द से भी यही अर्थ निकलता है। संस्कृति— सम+कृति अर्थात् अच्छी प्रकार से सोच—समझकर किये गये कार्य।

संस्कृति के अनुसार ही किसी समाज की जीवनशैली का निर्माण होता है। संस्कृति में आदर्शों, मूल्यों, विश्वासों एवं मान्यताओं एवं मानकों का योग संस्कृति में होता है। संस्कृति के मुख्य अंग परम्पराएँ, चिन्तन शैली, कला, शिल्प, वस्तु मूल्य तथा आचरण होते हैं। संस्कृति सामाजिक परम्पराओं का एक प्रारूप होता है संस्कृति सभ्यता की सहेली है। संस्कृति उस फूल के समान है जो मानव की क्रियाओं द्वारा खिलता है परन्तु संस्कृति अतिसुन्दर पुष्प है जो मानव की क्रियाओं द्वारा उसके प्रारूप को निर्धारित करता है संस्कृति के अतिसुन्दर पक्ष का विकास करना शिक्षा का कार्य है।

परिभाषा

टायलर “ संस्कृति वह जटिल पूर्णता है जिसमें उन सबका ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, नियम, रीति-रिवाज और इसी प्रकार की अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश होता है जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में सीखता है।

औटावे – “किसी समाज की संस्कृति से अर्थ उस समाज की सम्पूर्ण जीवन शैली से होता है”।

संस्कृति के वास्तविक प्रत्यय को इस प्रकार से भी समझा जा सकता है अपने आदिकाल में मानव पशुवत था। धीरे-धीरे उसने अपने मस्तिष्क और बुद्धि के प्रयोग से अपने जीवन को सरल व सुखमय बनाने हेतु अपने रहन-सहन व खान-पान की विधियां विकसित की। विचारों के आदान-प्रदान हेतु भाषा का विकास और अपने प्रयोग की अनेक वस्तुओं का निर्माण किया, क्यों कि उस समय आवागमन हेतु न मार्ग थे और न साधन इसलिए संसार के भिन्न-भिन्न भागों में बसे मनुष्यों ने अपने-अपने रहन-सहन एवं खान-पान की विधियां विकसित की अपनी भाषाओं का विकास किया। कालान्तर में उसने व्यवहार प्रतिमान रीति-रिवाज, कला कौशल, संगीत, नृत्य, भाषा-साहित्य, धर्म-दर्शन, आदर्श-विश्वास और मूल्य विकसित किये। इस प्रकार से संस्कृति को निम्न रूप में परिभाषित कर सकते हैं। “ किसी समाज की संस्कृति से तात्पर्य उस समाज के व्यक्तियों के रहन-सहन एवं खान-पान की विधियों, व्यवहार प्रतिमानों, आचार-विचार, रीति-रिवाज, कला-कौशल, संगीत नृत्य, भाषा-साहित्य, धर्म-दर्शन, आदर्श, विश्वास और मूल्यों के उस विशिष्ट रूप से होता है जो उसकी पहचान होते हैं।

संस्कृति की विशेषताएं

1. संस्कृति आदर्शात्मक होती हैं— संस्कृति में समूह के आदर्श-नियमों एवं विचारों का समावेश होता है यह समूह के व्यवहार के आदर्श-नियमों एवं प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है।
2. संस्कृति एक समन्वित प्रणाली हैं – संस्कृति में व्यवस्था वर्तमान होती है। इसके विभिन्न अंग एक-दूसरे के साथ समन्वित होते हैं।
3. संस्कृति सम्पूर्ण सामाजिक विरासत हैं— संस्कृति अतीत से संयुक्त होती है। अतीत जीवित रहता है। क्यों कि यह संस्कृति में समावेशित हैं यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को परम्पराओं एवं प्रथाओं द्वारा हस्तारित होता रहता है।
4. संस्कृति श्रम-विभाजन द्वारा अधिक जटिल स्वरूपों में विकसित हो जाती है। संस्कृति श्रम विभाजन द्वारा अधिक जटिल स्वरूपों एवं अन्तर्सम्बन्धों में विकसित होकर समाज के सदस्यों की अन्योन्याश्रिता में वृद्धि करती है।
5. संस्कृति कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करती है—संस्कृति समूहों की उन नैतिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है जो स्वयं में लक्ष्य है।
6. संस्कृति मनुष्य की व्यक्तिगत विरासत नहीं, अपितु सामाजिक विरासत होती हैं—यह समूह के सदस्यों की प्रकाशनों का सम्मिश्रण है यह सामाजिक कृति होती है, मनुष्य का निजी व्यवहार जब सामाजिक व्यवहार का प्रतिमान बन जाता है तो वह संस्कृति का रूप धारण कर लेता है।

7. भाषा संस्कृति का मुख्य वाहन है – भाषा के माध्यम से व्यक्ति अतीत में सीखे गये व्यवहार को हस्तारित करती है तथा संग्रहीत ज्ञान को भविष्य में हस्तारित करने में सक्षम बनाती है।
8. संस्कृति सीखी गई योग्यता हैं –संस्कृति नैसर्गिक नहीं होती। समाजीकरण आदतों एवं विचारों द्वारा सीखे गये लक्षणों को संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति सीखी जाती है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएं –

1. आध्यात्मिकता
2. सहिष्णुता
3. भौतिक व अभौतिक में समन्वय
4. आशावाद
5. वर्णाश्रम व्यवस्था
6. पुर्नजन्म का सिद्धान्त
7. ग्रहणशीलता
8. आधारभूत एकता

शिक्षा द्वारा संस्कृति के कार्य :-

1. संस्कृति का संरक्षण – शिक्षा संस्कृति का संरक्षण करती है। शिक्षा संस्कृति के रूप को सहेजकर कर रखती है।
2. संस्कृति का हस्तान्तरण – शिक्षा संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करने का कार्य करती है।
3. संस्कृति का परिमार्जन – शिक्षा संस्कृति में आयी बुराईयों को दूर करने का भी कार्य करती है। वह संस्कृति का परिमार्जन, परिशोधन करती है।

प्रश्न 24

सामाजिक गतिशीलता से आपका क्या अभिप्राय है। सामाजिक गतिशीलता के प्रकार कौन-कौनसे हैं ? शिक्षा तथा सामाजिक गतिशीलता में सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।

What do you mean by social mobility ? Explain the different types of social mobility ? Explain the relationship between education & social mobility.

उत्तर

सामाजिक गतिशीलता का अर्थ – व्यक्ति का एक सामाजिक स्थिति से हटकर दूसरी सामाजिक स्थिति में चले जाना। किसी एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक ढाँचे में अन्य कोई सामाजिक पद ग्रहण कर लेना ही सामाजिक गतिशीलता कहलाती है।

परिभाषाएं –

सोरोकिन – “सामाजिक गतिशीलता से तात्पर्य है किसी व्यक्ति या समूह का एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में संक्रमण करना।

बोगार्डस – “सामाजिक पद में कोई भी परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता है

फेयर चाइल्ड – “सामाजिक गतिशीलता से अभिप्राय प्रायः व्यक्तियों के एक समूह से दूसरे समूह की ओर गति से हैं।

सामाजिक गतिशीलता के प्रकार –

1. समकक्ष या क्षैतिज सामाजिक गतिशीलता – जब एक व्यक्ति या वस्तु एक स्थिति समूह से अपनी पंक्ति में ही उसी स्थिति के दूसरे समूह में स्थानान्तरित हो जाता है तो उसे समकक्ष या क्षैतिज सामाजिक गतिशीलता कहते हैं।
2. उद्वर्ग या रेखिक सामाजिक गतिशीलता – किसी व्यक्ति या समूह द्वारा अपने से उपर या नीचे की स्थिति वाले समूह में प्रवेश करना।
3. व्यक्तिगत या समूह सामाजिक गतिशीलता – किसी एक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति या पद में बदलाव आना अथवा पूरे समूह की स्थिति या पद में परिवर्तन आना।
4. स्पर्द्धात्मक सामाजिक गतिशीलता– स्वप्रयासों से प्रतिस्पर्द्धा के परिणामस्वरूप पद या स्थिति प्राप्त करना।
5. प्रदत्त सामाजिक गतिशीलता – किसी प्रभावपूर्ण व्यक्ति की अनुकम्पा से पद या स्थिति प्राप्त करना।

शिक्षा व सामाजिक गतिशीलता का सम्बन्ध –

सामाजिक गतिशीलता एवं शिक्षा के सम्बन्ध का प्रत्यक्ष उदाहरण वर्तमान समाज शिक्षा के प्रचार-प्रसार से सामाजिक गतिशीलता का त्वरित रूप दिखाई दे रहा है। स्थान, पद व स्थितियां तीव्रता से परिवर्तित हो रही हैं। भूमण्डलीकरण के दौर में विश्व सीमित हो गया है। शिक्षा प्राप्त करना हो या व्यवसाय करना, व्यक्ति समय व स्थान की सीमाओं में बंधकर रहना नहीं चाहता। यह सब शिक्षा का ही प्रतिफल है।

सामाजिक गतिशीलता पर शिक्षा का प्रभाव :-

1. शिक्षा के स्तर का प्रभाव – प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता व कुशलता के अनुरूप शिक्षा के एक स्तर तक पहुँच पाता है जो छात्र जिस स्तर तक शिक्षा प्राप्त कर पाता है उसी के अनुसार समाज में पद व स्थिति को प्राप्त कर पाता है।
2. पाठ्यक्रम की विविधता का प्रभाव – शिक्षा में आए नवाचार तथा पाठ्यक्रमों की विविधता ने सामाजिक गतिशीलता को बढ़ा दिया है छात्र के सम्मुख अनगिनत क्षेत्र हैं वह इच्छानुसार अपनी स्थिति में परिवर्तन कर सकने में समर्थ हैं।
3. दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त विद्यालयों का प्रभाव – दूरस्थ शिक्षा एवं मुक्त विद्यालयों से छोटे-छोटे कामकाज में लगे व्यक्ति भी प्रशिक्षण प्राप्त कर श्रेष्ठ पदों पर पहुँच सकते हैं।
4. शिक्षकों की सामाजिक गतिशीलता – शिक्षक के पद में विभिन्न स्तर होते हैं। तृतीय श्रेणी शिक्षक शिक्षा प्राप्त करके प्रथम या द्वितीय श्रेणी तक पहुँच सकता है।
5. छात्रों की सामाजिक गतिशीलता – शिक्षा के अवसर प्रत्येक छात्र के लिए समान होते हैं। प्रत्येक छात्र स्वयं की प्रतिभा, क्षमता, रुचि के अनुरूप स्वयं को भिन्न-भिन्न पद एवं स्थिति के योग्य बना लेता है।

शिक्षा का सामाजिक गतिशीलता पर प्रभाव :-

सी.ए. एण्डरसन ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि शिक्षा का सामाजिक गतिशीलता पर बहुत व्यापक प्रभाव नहीं पड़ता। उनका कहना है कि अमेरिका के अनेक लोग धनी बन गये। क्यों कि उनके माता-पिता बहुत धनी थे, न कि अपनी शिक्षा के कारण। धनाढ्य अथवा ऊँचे सामाजिक स्तर के हो गये। भारत के पारसी, बोहरे, जैन वर्ग के लोग शिक्षा के आधार पर सामाजिक गतिशीलता नहीं प्राप्त कर पाये। पैतृक सम्पत्ति ही वस्तुतः उनके सामाजिक स्तर का प्रधान कारण माना जा सकता है।

एण्डरसन की उपर्युक्त बातों के आधार पर यह मानना कठिन है कि शिक्षा का सामाजिक गतिशीलता पर प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ता। हम जानते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक लोग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा देने हेतु शहरों में आ जाते हैं इस प्रकार शिक्षा निश्चित रूप से सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करती है।

प्रश्न 25 "शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक अभिकरण है" स्पष्ट कीजिए। सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की क्या भूमिका है ?

The education is agent of social change, what is the role of education in social change ?

उत्तर

सामाजिक परिवर्तन दो शब्दों से मिलकर बना है—सामाजिक तथा परिवर्तन 'सामाजिक' शब्द की व्याख्या करते हुए समाजशास्त्री फिशर ने बताया है कि समाज के सम्बन्धों को सामाजिक कहा जाता है अर्थात् समाज की प्रत्येक घटना—सम्बन्धों के जाल को ही सामाजिक की परिभाषा दी गई है इसी प्रकार परिवर्तन का अर्थ है—पूर्व की अवस्था को नवीन रूप प्रदान करना। इस प्रकार समाज की पूर्वकालीन अथवा भूतकालीन अवस्थाओं को नई अवस्था प्राप्त होना या उन्हें नया रूप मिलना।

परिभाषाएं:—

डेविस — " समाज के कार्य एवं स्वरूप में होने वाले परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन कहलाते हैं"।

जिन्सबर्ग — "सामाजिक परिवर्तन से मेरा आशय सामाजिक संरचना अर्थात् समाज का आकार, संगठन, अंगों का सन्तुलन या इसके संगठन के प्रकारों में परिवर्तन से है"

डासन तथा गेटिस —सांस्कृतिक परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है, क्यों कि समस्त संस्कृति अपने उद्गम, अर्थ तथा प्रयोग में सामाजिक ही होती है।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन की अभिकर्ता (अभिकरण) के रूप में वर्तमान समय में शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त अभिकरण सिद्ध हो रही है। आज प्रत्येक शिक्षाशास्त्री तथा समाजशास्त्री इस तथ्य को निर्विवाद स्वीकार करता है कि शिक्षा के द्वारा तीव्र सामाजिक परिवर्तन होना सम्भव है इसे यदि इस तरह से कहा जाय तब भी सत्य है कि समाज ने शिक्षा की व्यवस्था केवल इसलिए की है कि इसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाए जा सके। शिक्षा वास्तव में कई उपायों से सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती है।

1. संस्कृति का हस्तान्तरण — शिक्षा समाज की संस्कृति का हस्तान्तरण, परिमार्जन तथा चयन करके सांस्कृतिक परिवर्तन लाती है।
2. दृष्टिकोण उदार बनाना — शिक्षा समाज के व्यक्तियों के दृष्टिकोणों को उदार तथा व्यापक बनाती है। जिससे वे नवीनताओं को स्वीकार करने में संकोच नहीं करते हैं।
3. वैज्ञानिक प्रगति — शिक्षा के द्वारा वैज्ञानिक उन्नति होती है। जिससे नये-नये आविष्कार होते हैं। जो समाज के कई क्षेत्रों में परिवर्तन लाते हैं।
4. आर्थिक प्रगति — शिक्षा के कारण समाज की आर्थिक उन्नति होती है और आर्थिक प्रगति सामाजिक परिवर्तन लाती है।
5. व्यवहार परिवर्तन — शिक्षा व्यक्तियों के व्यवहार, आदतों, जीवनशैली तथा विचारशैली व चिन्तन शक्ति को प्रभावित कर सामाजिक परिवर्तन लाती है।

6. अन्धानुकरण से बचाव :- शिक्षा के कारण व्यक्ति धर्म का अन्धानुकरण नहीं करता है। वह धर्म का वैज्ञानिक विश्लेषण कर फिर उसे स्वीकार या अस्वीकार करता है।
7. बुराईयां दूर करना :- शिक्षा समाज में व्याप्त बुराईयों तथा कुरीतियों से जनसाधारण को अवगत कराकर उनके विरुद्ध जनमत तैयार करती है।
8. परिवर्तनों को तीव्र गति- शिक्षा समाज में हो रहे परिवर्तनों की समीक्षा मूल्यांकन तथा समालोचना कर परिवर्तनों की गति को तीव्र करती है।
9. बाधा दूर करना -सामाजिक परिवर्तनों के मार्ग में जो बाधाएं आती हैं शिक्षा उन बाधाओं को दूर करके परिवर्तनों की गति को तीव्र करती है।
10. ज्ञान का प्रसार - शिक्षा ज्ञान के भंडार का विकास करती है तथा ज्ञान को जनसाधारण तक पहुंचाकर उनके आचार-विचारों को बदलने की चेष्टा करती है।

सामाजिक परिवर्तन हेतु शिक्षा की भूमिका

शिक्षा विविध उपायों तथा प्रभावों से सामाजिक परिवर्तन लाती है तथा सामाजिक परिवर्तन की गति तीव्र करती है। यदि कोई समाज शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता है तो उस समाज को यह ध्यान रखना होगा कि हर प्रकार की शिक्षा सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकती है उस समाज को अपनी शिक्षा प्रणाली की भी पुनर्चना करनी होगी और शिक्षा को वह रूप प्रदान करना होगा जिससे वह सामाजिक परिवर्तन लाने में अधिक सक्षम हो सके। इसके लिए शिक्षा की भूमिका निम्न प्रकार से होनी चाहिए -

1. शिक्षा शाश्वत मूल्यों को स्थायी करने वाली हो-प्रत्येक समाज चाहता है कि समाज में जो भी परिवर्तन आए उसके परिणामस्वरूप वह प्रगति की ओर अग्रसर हो। परिवर्तनों के द्वारा समाज अवनति की ओर नहीं जाना चाहता है। परिवर्तनों के द्वारा समाज अवनति की ओर न चला जाए, इस सम्भावना को रोकने के लिए समाज को चाहिए कि वह ऐसी शिक्षा -व्यवस्था का विकास करें जो समाज के शाश्वत मूल्यों को स्थायी कर सके। जैसे सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता आदि।
2. शिक्षा परिवर्तन हेतु प्रेरक बने - समाज ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करें जो समाज की परिवर्तन हेतु प्रेरणा प्रदान करें। वह समाज को यह स्पष्ट कर सके कि परिवर्तन न केवल आवश्यक ही है, अपितु कल्याणकारी तथा समाज के अस्तित्व हेतु अनिवार्य हैं।
3. शिक्षा जनजागरण वाली हो - वही शिक्षा-व्यवस्था सामाजिक परिवर्तन अच्छी प्रकार से ला सकती है, जो समाज में जनजागरण तथा नवचेतना का बिगुल बजाती हो।
4. शिक्षा सामाजिक मूल्यों की निर्मात्री हो- सामाजिक परिवर्तनों के लिए जिस शिक्षा की व्यवस्था की जाये वह ऐसी हो जो समाज की संस्कृति का परिमार्जन कर सके। संस्कृति में व्याप्त बुराईयों को दूर कर सके, तथा संस्कृति के उन मूल्यों का चयन कर सके जो वर्तमान समय के अनुकूल हैं तथा उन मूल्यों को त्याग सके जो आज उपयोगी नहीं हैं।
5. शिक्षा वैज्ञानिक प्रगति का ज्ञान कराने वाली हो- समाज को परिवर्तन लाने के लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए जो समाज के सदस्यों को विश्व में हो रहे वैज्ञानिक आविष्कारों, खोजों तथा सत्यों का ज्ञान करा सके।
6. शिक्षा सामाजिक कार्यकर्ताओं का उचित प्रशिक्षण कराने वाली हो - शिक्षा सामाजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान कर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करने वाली हो। ऐसी शिक्षण व्यवस्था आवश्यक है जो कुछ चुने व्यक्तियों को सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षित कर सके।

7. शिक्षा नागरिकों में अच्छे गुणों का विकास करने वाली हो— सामाजिक परिवर्तनों के लिए आवश्यक है कि समाज के व्यक्तियों में कुछ विशिष्ट गुण हो जैसे— उदारता, साहस, ग्रहणशीलता, विश्लेषण, तर्क तथा चिन्तन शक्ति आदि।
8. शिक्षा समाज का विकास करने वाली हो — सामाजिक परिवर्तन हेतु शिक्षा की ऐसी व्यवस्था के विकास की आवश्यकता है जो समाज के स्वरूप, उसकी कुरीतियों तथा कुप्रथाओं की ओर व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित कर सके तथा उन्हें दूर करने के लिए प्रेरित कर सके।

प्रश्न 26

विज्ञान और तकनीकी का समाज और शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का स्पष्ट कीजिए ?

Discuss the effects of science and technology in society and education in detail ?

उत्तर

पिछले दो सौ वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है यद्यपि विज्ञान ने पाठ्यक्रम में अपना सत्रहवीं तथा अठारवीं शताब्दियों में बना लिया था। परन्तु इस दिशा में विशेषः उन्नति 19वीं शताब्दी के मध्यकाल से ही आरम्भ हुई। इस प्रवृत्ति को मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियों से बहुत अधिक बल मिला कुछ विज्ञानवादियों ने मनोविज्ञान द्वारा प्रवर्तित अनुशासनवाद के सिद्धान्त को स्वीकार किया। विज्ञान के पठन-पाठन के लिए एक नई अध्ययन—अध्यापन प्रणाली की आवश्यकता हुई। यह पाठन प्रणाली मनोविज्ञान द्वारा ही प्राप्त हुई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के समक्ष चुनौती के रूप में शिक्षा का सार्वभौमिकरण था। संविधान में भी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने का दावा किया गया। इस दिशा में प्रयास भी किये जाते रहे किन्तु राष्ट्र की विपन्न आर्थिक स्थिति से उभरने के लिए समस्त प्रयास अर्थव्यवस्था को सुधारने पर केन्द्रित हो गए। साथ-साथ विज्ञान की उन्नति का प्रभाव समाज पर दिखाई देना प्रारम्भ हो गया। 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक की स्थिति तक आते-आते राष्ट्र ने तकनीकी विकास के उस स्थान को प्राप्त किया जिससे वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने में सफल हो सका तथा अन्य राष्ट्रों के साथ तकनीकी आदान-प्रदान में बढ़ोतरी हुई। इसी दौरान समस्त विश्व भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा था जिसका प्रभाव हमारे देश पर भी पड़ा। विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में तकनीकी ज्ञान एवं संचार क्रान्ति का परिणाम बहुत शीघ्र दिखाई देने लगा। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश के आर्थिक व सामाजिक विकास में विज्ञान एवं तकनीकी महत्व को भी आगे बढ़ाया।

1983 में भारत में प्रौद्योगिकी (तकनीकी) नीति बनाई गयी। इस नीति का उद्देश्य देश की सम्प्रभुता, अखण्डता एवं एकता को सुरक्षित रखते हुए देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाना था।

विज्ञान व तकनीकी का शिक्षा व समाज पर प्रभाव —

1. दूरस्थ अधिगम सुविधा
2. विविध पाठ्यक्रम
3. शैक्षिक नवाचारों का प्रयोग
4. परामर्श सेवा केन्द्र
5. समाज में जागरूकता

6. समाज के लक्ष्यों का निर्धारण
7. नई सामाजिक व्यवस्था
8. समाज की विभिन्न समस्याओं का समाधान
9. समाज के सदस्यों में निडरता
10. मल्टीमीडिया अधिगम केन्द्र
11. विश्व के अन्य राष्ट्रों से सम्पर्क का पाठ्यक्रम पर प्रभाव
12. अद्यतन ज्ञान

प्रश्न 27 'शैक्षिक विषमता' का अर्थ एवं संप्रत्यय स्पष्ट कीजिए । इस समस्या के समाधान के लिए अपने रचनात्मक सुझाव भी दीजिए ।

Discuss the concept and meaning of educational disparity, describe your creative suggestions for resolving this problem.

उत्तर

भारतीय संविधान में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि राज्य, धर्म, जाति, प्रजाति अथवा जन्म स्थान के आधार पर व्यक्तियों में भेद नहीं करेगा। भारत जैसे प्रजातांत्रिक राष्ट्र में शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने का संप्रत्यय कोई नया विचार नहीं है। वैदिक काल से ही हमारे देश में सबको शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने पर बल दिया गया था। कालान्तर में समाज में व्याप्त कुरीतियों के परिणामस्वरूप शिक्षा प्रदान करने में भेदभाव रखा जाने लगा। कुछ विशेष जाति के सदस्यों एवं महिलाओं को शिक्षा देना उस समय कठिन हो गया। परिणामस्वरूप ऐसी जातियां शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ गईं। यहां शैक्षिक विषमता से तात्पर्य जो जातियों, पिछड़े वर्गों, समाज के वंचित वर्गों साथ ही महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ेपन से है।

शिक्षा के अवसरों की समानता – देश के सभी बच्चों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर और समान सुविधाएं प्रदान करना है। जाति, धर्म, रंग, रूप, लिंग तथा क्षेत्र के आधार पर पक्षपात न करते हुए सबके लिए शिक्षा के उपयुक्त अवसर प्रदान करना है इन अवसरों के अतिरिक्त सुविधाएं जुटाकर प्रदान किया जाना चाहिए। जिससे जो वर्ग किन्हीं कारणों से शिक्षा में पिछड़ा है उसे अतिरिक्त अवसर प्रदान कर सामान्य धारा में मिला दिया जाये।

शिक्षा आयोग ने इस विषय में लिखा है “ शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य शैक्षिक अवसरों की समानता प्रदान करना है एवं पिछड़े अथवा अपर्याप्त सुविधाएं प्राप्त वर्ग या व्यक्तियों का अपने विकास के लिए शिक्षा प्राप्त करने के योग्य बनाना है।

शिक्षा के अवसरों की समानता की आवश्यकता

1. यह एक सम समाज को स्थापित करने के लिए आवश्यक है—ऐसे समाज को जिसमें समता तथा सामाजिक न्याय कसौटी हो।
2. इसकी आवश्यकता इस कारण है कि जनतन्त्र में सब व्यक्तियों के शिक्षित होने पर ही जनतन्त्रीय संस्थाओं की सफलता निर्भर करती है।
3. शैक्षिक अवसरों की समानता ही राष्ट्र के शीघ्र विकास को प्राप्त कर सकती है।
4. शिक्षा के अवसरों की समानता राष्ट्र के सब व्यक्तियों में उनकी निहित क्षमताओं को विकसित करने में सहायक होगी।

5. अधिक निकट सह-सम्बन्ध, विभिन्न व्यवसायों के लिए जितने कर्मचारियों की आवश्यकता होती है उनकी संख्या में तथा उन व्यवसाय के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों की संख्या में प्राप्त हो जायेगा।

शिक्षा के समान अवसरों के लिए क्षेत्र :-

1. पिछड़े वर्गों की शिक्षा
 - अ.) अनुसूचित जाति
 - ब.) अनुसूचित जनजातियां
 - स.) जरायम पेशा
 - द.) खानाबदोश
2. आर्थिक रूप से पिछड़ा वर्ग
3. नारी शिक्षा
4. क्षेत्रीय असन्तुलन
5. विकलांगों की शिक्षा
6. अल्पसंख्यकों की शिक्षा

1. अनुसूचित जाति व जनजातियों की शिक्षा हेतु रचनात्मक सुझाव

- विद्यालयों में इन जाति के बालकों हेतु पुस्तकों, लेखन सामग्री, वस्त्र और मध्याह्न भोजन की निःशुल्क व्यवस्था
- किसी क्राफ्ट या कौशल का ज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया जाना चाहिए।
- शिक्षा का माध्यम उनकी भाषाएं ही होनी चाहिए, पाठ्यपुस्तकों की रचना भी उन्हीं की भाषा में होनी चाहिए।
- जिला मुख्यालयों पर छात्रावासों की स्थापना करना।
- इनके विद्यालयों में नियुक्त अध्यापकों को इन जातियों के जीवन और संस्कृति का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।
- इन जातियों के क्षेत्रों में ही शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए, जिससे भावी अध्यापक उस वातावरण से भली-भांति परिचित हो सकें, जहां उनको अध्यापन कार्य करना है।

2. निःशक्तजनों की शिक्षा हेतु सुझाव :-

- सामान्य शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ ही इनके लिए कार्यक्रम बनाया जाये।
- इन बालक/बालिकाओं के लिए विशिष्ट विद्यालय खोलकर पृथक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- गम्भीर रूप से बाधित बच्चों के लिए जनपद मुख्यालयों पर छात्रावास सुविधा सहित विशेष विद्यालय होने चाहिए।
- इन बालकों को शिक्षण प्रदान करने के लिए शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
- स्वयंसेवी संगठनों द्वारा किये जाने वाले प्रयास को सरकार को प्रोत्साहित करना चाहिए।

3. स्त्री शिक्षा हेतु सुझाव

1. बालिकाओं के लिए पूर्व माध्यमिक विद्यालय उनके गृह के समीप होने चाहिए।
2. विद्यालयों में आवासीय सुविधाएं भी उपलब्ध करायी जानी चाहिये।

3. स्त्री शिक्षा हेतु सुविधाएं तथा प्रोत्साहन को बढ़ाया जाना चाहिए।
4. महिला पॉलिटैक्निक की स्थापना की जाये।
5. प्राथमिक स्तर पर कुल प्रावधानों का 50% महिलाओं के लिए निश्चित किया जाए।
6. संचार माध्यमों द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों में लिंगभेद व पक्षपातपूर्ण कार्यक्रमों को रोका जाना होगा तभी विद्यालयों में लिंगीय समानता सम्बन्धी मूल्यांकों का निर्माण किया जा सकेगा।
4. **अल्पसंख्यकों की शिक्षा हेतु सुझाव**
 1. मदरसा शिक्षा का आधुनिकीकरण किया जाये।
 2. प्राथमिक विद्यालयों में सुविधाएं प्रदान करने के लिए वित्तीय सहायता।
 3. अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना।
 4. बालिकाओं हेतु आवासीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना।

प्रश्न 28 'भविष्यशास्त्र से आपका क्या अर्थ है? भविष्य का अध्ययन शिक्षा की समस्याओं को समझाने में किस प्रकार सहायक हो सकता है। स्पष्ट कीजिए ?

What do you understand by futurology ? How can the study of future be helpful in replanning the problem of education.

उत्तर

मानव सदैव अपने भविष्य के प्रति चिन्तित रहा है। उसने इसके लिए अनेकानेक योजनाएं बनाई हैं अनेकानेक प्रबन्ध किये हैं ये योजनाएं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रही हैं। प्राचीन भारत में इस लोक के स्थान पर परलोक सम्बन्धी भविष्य की चिन्ता ज्यादा की गई थी जबकि पश्चिम में इस लोक की चिन्ता प्रमुख रही है। इन चिन्ताओं ने इन समाज के व्यक्तियों को भविष्य के सम्बन्ध में व्यवस्थित अध्ययन के लिए उत्प्रेरित एवं विवश किया। परिणामतः इन समाजों में एक ऐसे शास्त्र का जन्म हुआ है जिसे भविष्य के अध्ययन सम्बन्धी शास्त्र या भविष्यशास्त्र के नाम से जाना जाने लगा है।

भविष्य शास्त्र का विकास एवं क्षेत्र – भविष्यशास्त्र एक नया विषय है जो कि निर्माणावस्था में है। वेन्डल बेल ने भविष्य सम्बन्धी इस विज्ञान के सम्बन्ध में लिखा है कि भविष्य के इस अध्ययन का प्रमुख स्वरूप न तो वर्णन है और न यह प्रमुखतः भविष्यवाणी ही है यह नवप्रयोग तथा दर्शन है। इसके अन्तर्गत मूल्यांकों और लक्ष्यों का स्पष्टीकरण और मूल्यांकन प्रवृत्तियों का विवरण दिया जाता है तथा इसमें वैकल्पिक भविष्यों का प्रस्तुतिकरण तथा अन्तःनिर्भरताओं के वर्तमान क्रमों का विवरण आता है।

भविष्यशास्त्र का मूलभूत सम्प्रत्यय यह है कि भविष्य स्वतः ही घटित नहीं हो जाता हम उसे बनाते हैं और हम इसका उपयोग कर सकते हैं आने वाले कल के मूल्यांकों, पारिवारिक संरचनाओं, तकनीकी आदि के रूपों की कल्पना की जा सकती है।

भविष्य के लिए शिक्षा

शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों करती हैं अतः यदि हम भविष्य की शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण करना चाहते हैं तो हमें उस समय के भविष्य के लिए शिक्षा का निर्धारण करना है उस समय की विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना होगा उदाहरण के लिए मान लीजिए – हम भारत में 2050 की परिस्थितियों का अनुमान करना होगा इन परिस्थितियों के स्वरूप निर्धारण के लिए भविष्यशास्त्रियों विधियों एवं प्रक्रियाओं का आश्रय लेना होगा अतः भविष्य के लिए शिक्षा की व्यवस्था के अध्ययन का आधार भविष्यशास्त्र है।

1. भविष्य की शिक्षा के उद्देश्य – एनविन टाफलर ने भविष्य की शिक्षा के दो उद्देश्यों पर जोर दिया है कि वह –

- व्यक्ति को इस प्रकार शिक्षित करे कि वह भविष्य में होने वाले परिवर्तन का अनुमान लगाकर उसके अनुकूल अपने को बना सके।
2. भावी जीवन की भूमिकाओं की कल्पना करने एवं समझने का प्रशिक्षण – मॉरिस रोजन मागे का मत है कि व्यक्ति के भावी व्यवसाय के चित्र से उस व्यक्ति के वर्तमान दृष्टिकोण, मुल्यों तथा व्यवहार पर प्रभाव पड़ सकता है अतः छात्रों को भविष्य के जीवन की कल्पना करने, उसे समझने, उसके अनुरूप व्यवहार करने का अवसर तथा प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है।
 3. भविष्य की अनजान परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास— भविष्य की शिक्षा छात्रों में अनजान परिस्थितियों में सामंजस्य की क्षमता विकसित करती है तथा उनके व्यक्तित्व को गतिशील बनाती है साथ ही छात्रों में सामग्री एकत्रीकरण की कुशलता, विश्लेषण की कुशलता, ग्रहण करने की कुशलता, सीखने की कुशलता का विकास करती है।
 4. भविष्य के वैकल्पिक स्वरूप की कल्पना करने की क्षमता का विकास – आगामी 3-4 दशकों में उद्योग एवं व्यवसायों का स्वरूप क्या होगा सामाजिक संस्थाओं का स्वरूप क्या होगा ? सामाजिक सम्बन्धों की स्थिति क्या होगी ? इन समस्त बातों में समय के अनुसार बनाना भविष्य की शिक्षा का उद्देश्य है।
 5. भविष्य को मापने की क्षमता का विकास – टॉफ्लर का मत है कि भविष्य की शिक्षा छात्रों में भविष्य के स्वरूप को मापने की क्षमता का विकास करना है अर्थात् वह सिखाती है कि भविष्य का स्वरूप वर्तमान से कितना अधिक होना तथा किस सीमा तक आगे जा सकता है।
 6. लोकतान्त्रिक तरीकों पर बल – भविष्य की शिक्षा पद्धति की विधियों में लोकतान्त्रिकता होनी चाहिए।
भविष्य की शिक्षा के क्षेत्र में युनेस्को ने एक महत्वपूर्ण प्रतिवेदन लर्निंग टू बी (Learning to be) के नाम से प्रकाशित किया इसमें शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य बताये गये हैं।
- जीवनपर्यन्त चलने वाली (life long) शिक्षा प्रदान करना।
 - मानव का सम्पूर्ण विकास करना।
 - लोकतान्त्रिकता में विश्वास उत्पन्न करना।
 - अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का निर्माण करना।

प्रश्न 29

निम्न विद्यालयीकरण से क्या तात्पर्य है, इसका प्रतिपादन क्यों किया गया है ?

What do you understand by re-schooling? Why the concept of re-schooling was propaganda ?

उत्तर

निम्न विद्यालयीकरण या निर्विद्यालयीकरण का विचार इवान इलिच के द्वारा किया गया कि समाज का निर्विद्यालयीकरण कर देना चाहिए। निर्विद्यालयीकरण से तात्पर्य है कि समाज से विद्यालयों की समाप्त कर देना चाहिए। इवान इलिच ने 'डी-स्कूलिंग सोसाइटी' नामक पुस्तक के साथ शिक्षा दर्शन में एक नवीन प्रत्यय दिया इस पुस्तक के पश्चात् उन्होंने 'शैडो वर्क' नामक पुस्तक में भी अपने विचार दिए। विद्यालयविहीन समाज की धारणा इस अनुमान पर केन्द्रित है कि सार्वजनिक शिक्षा विद्यालयी शिक्षा द्वारा सम्भव नहीं है। इलिच का कहना है कि अनेकों विद्यार्थी विशेषकर वे जो निर्धन हैं अतः प्रज्ञात्मक ढंग से जानते हैं कि विद्यालय उनके लिए क्या करते हैं वे उन्हें भ्रम में डालते हैं प्रक्रिया तथा वस्तु के सम्बन्ध में।

इलिच का कहना है कि विद्यालय जैसे कि वह है उनसे समाज को कोई लाभ नहीं मिल रहा है। वरन् वे तो राष्ट्र की पूंजी व्यर्थ के शिक्षण में गंवा रहे हैं तो दूसरी ओर दरिद्रों की दशा में कोई भी परिवर्तन लाने में असमर्थ हैं इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि विद्यालय के विकल्प तलाश किये जाये। इलिच कहता है कि वर्तमान प्रकार के विद्यालयों को एक विकसित समाज में कोई स्थान नहीं दिया जाये उनके अनुसार विद्यालयविहीन समाज का अर्थ एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था से है जिससे मूल्यों के संस्थापन पर बल नहीं है वरन् जानबुझकर एक क्रियाशीलता के जीवन को उपभोक्ता के जीवन की तुलना में चुना गया है एक ऐसी जीवनशैली का चुनाव किया जाता है जो हमें स्वैच्छिक तथा स्वतंत्र बनाने में योगदान देती है। इसके लिए हमें एक मानक की श्रृंखला की आवश्यकता होगी जो हमें यह अनुभूति प्रदान करेगी कि हम उन संस्थाओं को पहचान ले जो कि व्यक्तिगत वृद्धि को लत की तुलना में सहायता देती है और साथ-साथ यह इच्छा भी कि हम अपने तकनीकी साधनों को इस प्रकार की संस्थाओं में उन्नति लाने में व्यक्त करें।

विद्यालय की समाप्ति क्यों ?

इलिच के अनुसार अधिकांश बालक जानते हैं कि विद्यालय उनके लिए क्या करता है ? बालकों में विद्यालय संशय एवं शंकाएं उत्पन्न करते हैं। और फिर उनमें एक नया और झुठा तर्क विकसित किया जाता है। जिससे बालक झूठी सफलता के पीछे भागता है बालक का विद्यालयीकरण किया जाता है जिससे वह शिक्षण को अधिगम समझने लगे, कक्षा-उन्नति को शिक्षा समझे, उपाधियों को योग्यता या क्षमता समझने लगे, धारा प्रवाहितों को कुछ नया कहने की योग्यता समझे और मूल्यों के स्थान पर सेवा को स्वीकार करे इलिच आगे कहते हैं आज के विद्यालय बालकों में यह भ्रम पैदा करते हैं जिसके शिकार होकर वे चिकित्सकीय देखभाल को स्वास्थ्य सेवा, समाज सेवा को सामुदायिक जीवन, पुलिस रक्षा को सुरक्षा, सैन्य व्यवस्था को राष्ट्र की सेवा तथा आपाधापी को उत्पादक कार्य समझने लगते हैं ये सब गलत धारणाएं उस भ्रम के कारण हैं जो बालकों में विद्यालय द्वारा पैदा किया जाता है। एक ओर तो शिक्षा व्यय बढ़ रहे हैं, दूसरी ओर विश्व में निरक्षरता तथा शैक्षिक अपव्यय तथा अवरोधन बढ़ रहे हैं। अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ने वालों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। जब समाज में परिवार, पड़ोस, मन्दिर, मस्जिद, राजनैतिक दल, क्लब, संघ तथा ऐसी अन्य व्यावसायिक संस्थाएं हैं तब पृथक से विद्यालयों की आवश्यकता नहीं है। विद्यालय पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम आदि के द्वारा विभिन्न व्यक्तियों पर एक समान बोझ लादना चाहते हैं हम विभिन्न योग्यताओं वाले व्यक्तियों पर समान बोझ नहीं लाद सकते हैं। जबकि वर्तमान विद्यालय ऐसा कर रहे हैं। समुचित शिक्षा हेतु अनिवार्य है कि बालक की योग्यताओं तथा उसके लिए तैयार शैक्षिक बोझ के मध्य तारतम्यता एवं उपयुक्तता हो। इन दोनों के मध्य समन्वित उपयुक्तता हो। इन दोनों के मध्य समन्वित उपयुक्तता विद्यालय के स्थान पर अन्य संस्थाएं अपेक्षाकृत अधिक समानता के साथ रह सकती हैं।

विद्यालयों में एक प्रकार की अविवेकीकृत स्थिरताएं होती हैं जो अनेक गलत धारणाओं पर आधारित होती हैं। उदाहरण के लिए यह धारणा कि हम व्यवहारगत परिवर्तनों को माप सकते हैं, पूरी तरह से निराधार है। आधुनिक युग में यह दावा किया जा रहा है कि यदि शिक्षा तकनीकी को ओर अधिक वित्तीय सहायता दी जाय तो विद्यालय ऐसी परिस्थितियां पैदा कर सकते हैं जिनमें बहकर व्यक्ति अधिगम कर सकता है किन्तु यह धारणा भी वास्तव में निराधार है क्योंकि अब तक विद्यालयों के जितने भी नये-नये विकल्प हमारे सामने आये हैं वे कोई अच्छे परिणाम नहीं दे पाये हैं। वास्तव में आज के स्कूल छात्रों की सेवा नहीं करते अपितु अध्यापकों के उद्देश्यों की सेवा करते हैं, उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर इवान इलिच कहते हैं कि आज के समाजों में ऐसे विद्यालयों को समाप्त कर देना चाहिए जो

व्यक्तियों के अधिगम की क्या व्यवस्था होगी। इसके लिए इलिच चार साधनों का विकास करने की सिफारिश करते हैं।

1. शैक्षिक तत्वों के लिए सन्दर्भ सेवाएं – अधिगम के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुएं आधारभूत साधन हैं प्रकृति, पुस्तकालय, सशुल्क संस्थाएं प्रयोगशालाएं, संग्रहालय, अजायबघर, नाट्यशालाएं, चिड़ियाघर, कल-कारखाने, हवाई अड्डे, कृषि फार्म, बाग बगीच आदि सब मिलकर अधिगम के असीमित अवसर प्रदान करते हैं।
2. कौशल विनिमय केन्द्र – वास्तविक एवं जीवनोपयोगी अधिगम के लिए ऐसी व्यवस्था हो जिससे वे व्यक्ति जो किसी न किसी क्षेत्र तथा कार्य से सम्बन्धित कौशल अर्जित कर चुके हो वे अपने कौशल की सूची बनाये व ये भी लिखा हो कि वे किन परिस्थितियों में सीखने वाले का अपना कौशल सीखा सकते हैं।
3. साथी मेल-मिलाप – अधिगम सम्प्रेषण के लिए यह भी अत्यन्त उपयोगी हैं कि अधिगमकर्ता को उन क्रिया – कलाओं में व्यस्त रखा जाय जिसमें उनकी रुचि है।
4. शिक्षाविदों की सन्दर्भ सेवाएं – इवान इलिच सामाजिक अधिगम के लिए अपने प्रस्तावों में कहते हैं कि विभिन्न विषयों के ज्ञाता ऐसे शिक्षाविदों की सूची या निर्देशिका बनायी जाय जिसमें इनके नाम, पते, योग्यताएं विशेष योग्यताओं के क्षेत्र उनकी शर्तें शामिल हो, इसमें वे अपना शुल्क भी दे सकते हैं वे निर्धारित शुल्क देकर उनकी सेवाएं प्राप्त कर सकते हैं।

संक्षेप में निर्विद्यालयीकरण से निम्न तथ्य प्रकट होते हैं—

1. यह सभी प्रकार के विद्यालयों का विरोध करता है।
2. यह विद्यालयीकरण का भी विरोध करता है।
3. यह शिक्षक का विरोध करता है।
4. अदृश्य-पाठ्यक्रम की बात स्वीकार करता है।
5. प्रमाण-पत्रों तथा उपाधियों का विरोध करता है।
6. पूर्णकालीन उपस्थिति की आलोचना करता है।
7. शिक्षण को एक भौतिकवादी व्यवसाय मानता है।
8. स्व-प्रेरणात्मक अधिगम पर बल देता है।
9. विद्यालय एक अधिगम जाल के समान हो
10. शिक्षा – उद्देश्यों को महत्व देने की बात स्वीकार करता है।
11. दक्षता विनिमय पर बल देता है।

प्रश्न 30 आधुनिकीकरण एवं शिक्षा का संप्रत्यय स्पष्ट कीजिए ?

Describe the concept of modernization and education ?

उत्तर

परम्परात्मक समाजों में होने वाले परिवर्तनों या औद्योगिकीकरण के कारण पश्चिमी समाजों में आए परिवर्तनों को समझने तथा दोनों में भिन्नता को प्रकट करने के लिए विद्वानों ने आधुनिकीकरण की अवधारणा को जन्म दिया। एक तरफ परम्परागत समाज को रखा और दूसरी तरफ आधुनिक समाज को। इस प्रकार उन्होंने परम्परात्मक बनाम आधुनिकता को जन्म दिया इसके साथ ही जब पाश्चात्य विद्वान उपनिवेशों एवं विकासशील देशों में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा करते हैं तो वे आधुनिकीकरण की अवधारणा का सहारा लेते हैं।

परिभाषा :- राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964-66) के प्रतिवेदन में भी आधुनिकीकरण को इसी रूप में परिभाषित किया गया है— किसी राष्ट्र के आधुनिकीकरण से तात्पर्य विज्ञान एवं तकनीकी के प्रयोग से उस राष्ट्र के आर्थिक विकास करने और जन – साधारण के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने से है।

आज आधुनिकीकरण में प्रबन्ध तकनीकी का भी प्रयोग किया जाता है तब आधुनिकीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "किसी राष्ट्र के आधुनिकीकरण से तात्पर्य देश-विदेश की अद्यतन वैज्ञानिकों खोजों और वैज्ञानिक एवं प्रबन्ध तकनीकी के प्रयोग से औद्योगिक विकास करने, आर्थिक विकास करने, विभिन्न कार्यक्षेत्रों की क्षमता बढ़ाने और इस सबसे जनसाधारण के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने से होता है।

मैरियन जे. लेवी " मेरी आधुनिकीकरण की परिभाषा शक्ति के जड़ स्रोतों और प्रयत्न के प्रभाव को बढ़ाने के लिए उपकरणों के प्रयोग पर आधारित है मैं इन दो तत्वों में से प्रत्येक को सातत्व का आधार मानता हूँ।

आधुनिकीकरण एवं शिक्षा

शिक्षा मनुष्य के विचार एवं व्यवहार में परिवर्तन करने का मुख्य साधन है भारत में आधुनिकीकरण हेतु दो शीर्ष उपाय शिक्षा से सम्बन्धित है। पहला दसवर्षीय अनिवार्य शिक्षा एवं निःशुल्क सामान्य शिक्षा की व्यवस्था और दूसरा उच्च कोटि की विज्ञान, तकनीकी एवं प्रशासन की शिक्षा की व्यवस्था। यदि ध्यानपूर्वक देखा-समझा जाए तो आधुनिकीकरण के जिन अन्य उपायों-आर्थिक विकास, प्राकृतिक संसाधनोंकी खोजरू मानव संसाधन का निर्माण, जनसंख्या नियन्त्रण और राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण इन सबकी प्राप्ति भी शिक्षा पर निर्भर करती है।

आधुनिकीकरण में शिक्षा के उद्देश्य – आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य सहायक हो सकते हैं—

1. तर्कपूर्ण चिन्तन का विकास
2. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास
3. नेतृत्व के गुणों का विकास
4. नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास
5. बौद्धिक क्षमताओं और कौशलों का विकास करना।
6. प्रजातांत्रिक नागरिकता का विकास करना।
7. सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देना
8. राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना।

आधुनिकीकरण हेतु पाठ्यक्रम

1. पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों की प्रमुखता होनी चाहिए।
2. पाठ्यक्रम में कम्प्यूटर की शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।
3. अंग्रेजी को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
4. पाठ्यक्रम में कार्य अनुभव (Work experience) को महत्व दिया जाना चाहिए।
5. पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।
6. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW) तथा रचनात्मकता और सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करने वाले विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए।
7. पाठ्यक्रम में नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा तथा मानव मूल्यों की शिक्षा का प्रावधान होना चाहिए।
8. पाठ्यक्रम में स्वास्थ्य शिक्षा और समाजसेवा कार्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए।

9. पाठ्यक्रम में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तीव्र बनाने के लिए स्त्री शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा आदि को भी महत्व दिया जाना चाहिए।

आधुनिकीकरण में शिक्षण विधियां – आधुनिकीकरण की दृष्टि से परम्परागत शिक्षण विधियों के स्थान पर वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इन विधियों में प्रमुख हैं – योजना विधि, समस्या –समाधान विधि, प्रदर्शन विधि, ह्युरिस्टिक विधि, निरीक्षण विधि, प्रयोग विधि, और भाषण विधि आदि। शिक्षण में टेलीविजन, रेडियों, टेपरिकार्डर, वीडियो टेप, प्रोजेक्टर, कम्प्यूटर आदि शिक्षण साधनों का भी उपयोग किया जाना चाहिए।

आधुनिकीकरण में विद्यालय की व्यवस्था – विद्यालय में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यापक व्यवस्था होनी चाहिए। विद्यालय का भवन, फर्नीचर, भौतिक सुविधाएं, पुस्तकालय, वाचनालय, क्रीडास्थल, प्रयोगशालाओं आदि की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए। विद्यालय का शैक्षिक वातावरण श्रेष्ठ होना चाहिए, और प्राचार्य तथा शिक्षकों को अपने बालकों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए।

आधुनिकीकरण में शिक्षक की भूमिका – आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, इसके लिए शिक्षक में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए—

1. शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण एवं अन्य विषयों तथा क्षेत्रों का विस्तृत ज्ञान होना चाहिए।
2. शिक्षक को अपने नवीनतम शैक्षिक प्रौद्योगिकी का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और उसके द्वारा इनका प्रयोग शिक्षण में किया जाना चाहिए।
3. शिक्षक की शिक्षण कार्य में रुचि होनी चाहिए और उसे शिक्षक के महत्व, उसकी गरिमा तथा उसके कार्यों से पूर्ण परिचित होना चाहिए।
4. शिक्षक को देश की आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर बल देना चाहिए।
5. शिक्षक को अपने छात्रों में सकारात्मक, निर्णयात्मक और यथार्थवादी दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए।
6. शिक्षक को अपने छात्रों में पढ़ने की रुचि जाग्रत करनी चाहिए।
7. शिक्षक को विद्यालय में विभिन्न पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था करनी चाहिए और उनमें भाग लेने हेतु छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए।
8. शिक्षक को अपने छात्रों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए और उसे एक मार्गदर्शक की भूमिका निभानी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा आर.ए. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार
2. शर्मा रजनी ,पारीक मथुरेश्वर उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षण
3. अरोड़ा रीता, मारवाहा सुदेश शिक्षण एवं अधिगम के मनो-सामाजिक आधार

